क्रमबद्धपर्याय : निर्देशिका

(माननीय डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की अनुपम कृति 'क्रमबद्धपर्याय' के अध्यापन के उद्देश्य से लिखी गई सहायक पुस्तक)

लेखक :

अभयकुमार जैन

एम.काम. जैनदर्शनाचार्य

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-४ बापूनगर, जयपुर ३०२०१५

प्रथम संस्करण : ३ हजार

२ अक्टूबर, २००३

मूल्य : दस रुपये

प्रस्तुत कृति की प्रकाशन व्यवस्था हेतु साहित्य प्रकाशन ध्रुव फण्ड में प्राप्त धन राशि

१.	पूज्य श्री कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली	२५,०००/- रु.
२.	श्रीमती कुसुमलता शान्तिकुमारजी पाटनी, छिन्दवाड़ा	११,०००/- रु.
३.	श्री प्रमोदकुमार जैन पी.के. छिन्दवाड़ा	१०,०००/- रु.
४.	श्रीमती पुष्पलता (जीजीबाई) अजितकुमार जैन, छिन्दवाड़ा	४,०००/- रु.
	कुल राशि	**५०,०००/- रु.**

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

१.	श्री डी.पी. जैन मुम्बई	९,०००/- रु.
२.	श्रीमती सुलेखा शाह, जौहरी बाजार, जयपुर	१,०००/- रु.
३.	श्रीमती कान्तादेवी लालचन्द जैन, मुम्बई	५००/- रु.
	कुल राशि	**१०,५००/- रु.**

मुद्रक :
जे. के. ऑफसेट प्रिन्टर्स
जामा मस्जिद, दिल्ली

क्रमबद्धपर्याय : निर्देशिका

(माननीय डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की अनुपम कृति 'क्रमबद्धपर्याय' के अध्यापन के उद्देश्य से लिखी गई सहायक पुस्तक)

लेखक :
अभयकुमार जैन
एम.काम. जैनदर्शनाचार्य

प्रकाशक :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-४ बापूनगर, जयपुर ३०२०१५

क्या?		कहाँ?

प्रकाशकीय

वीतरागी देव-गुरु-धर्म एवं आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रति अगाध श्रद्धा सम्पन्न पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री द्वारा लिखित यह क्रमबद्धपर्याय-निर्देशिका प्रकाशित करते हुए हम अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

इस निर्देशिका का स्वरूप और इसकी उपयोगिता के सन्दर्भ में उन्होंने 'अहो भाग्य' में अपने विचार व्यक्त कर दिये हैं, जिन्हें यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

पण्डित अभयकुमारजी को लघुवय से ही पूज्य गुरुदेवश्री एवं डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का सान्निध्य प्राप्त हुआ है। धनार्जन हेतु व्यापार आदि से विमुख होकर उन्होंने अपना सारा जीवन आध्यात्मिक चिन्तन-मनन, अध्ययन-अध्यापन एवं लेखन आदि में समर्पित किया है। उनके द्वारा लिखी गई अपने ढंग की यह अपूर्व कृति निश्चित रूप से समाज को लाभदायक होगी – इसमें कोई सन्देह नहीं है। जुलाई १९९८ से प्रारम्भ छिन्दवाड़ा प्रवास के पश्चात उनके द्वारा रचित आत्मानुशासन पद्यानुवाद, लघुतत्त्व स्फोट पद्यानुवाद, नियमसार कलश पद्यानुवाद तथा भक्ति गीतों के १२ कैसेटों से समाज लाभान्वित हो ही रहा है। एतदर्थ हम उनके विशेष आभारी हैं।

इसकी प्रकाशन व्यवस्था का दायित्व सम्हालने के लिए श्रीमान अखिल बंसल जयपुर भी धन्यवाद के पात्र हैं।

हमें आशा है, सभी लोग इस कृति के माध्यम से क्रमबद्धपर्याय का मर्म समझकर पर-पदार्थों और पर्यायों के कर्त्तत्व से रहित होकर अकर्त्ता ज्ञायक स्वभाव की अनुभूति की ओर अग्रसर होंगे।

ब्र. यशपाल जैन, *एम.ए.*, जयपुर
प्रकाशन मंत्री
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

अहो भाग्य

श्री जिनवर का, दिव्य-ध्वनि का कुन्दकुन्द का है उपकार।
जिनवर-कुन्द-ध्वनि दाता श्री गुरु कहान को नमन हजार।।

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की अकारण करुणा के फलस्वरूप प्राप्त तत्त्वज्ञान हम सबके जीवन की बहुमूल्य निधि है। उनके द्वारा समझाए गए जिनागम के अनेक सिद्धान्तों में से क्रमबद्धपर्याय तो मानो तत्काल भव का अन्त करके मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त कराने वाला महामंत्र है।

पूज्य गुरुदेव श्री के माध्यम से यह महामन्त्र प्राप्त करके अपने जीवन को भवान्तक दिशा देने वाले तत्त्ववेत्ता विद्वतशिरोमणि माननीय डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल भी अपनी रोचक शैली, प्रभावशाली वाणी और बोधगम्य लेखनी के माध्यम से उक्त महामंत्र के प्रचार-प्रसार में सर्वस्व समर्पित किए हुए हैं। उनकी लेखनी के जादू से स्वयं पूज्य गुरुदेवश्री भी प्रभावित होकर कह उठे "बधा पंडितो पानी भरे छे...... गुरुदेवश्री द्वारा उनकी अमर कृति 'धर्म के दशलक्षण' और 'क्रमबद्धपर्याय' के बारे में मुक्त कण्ठ से व्यक्त किये गए प्रशंसा भरे उद्‌गार आज भी कैसेट के माध्यम से सुनकर रोमाञ्च हो जाता है।

वे मेरी मनुष्य पर्याय के उत्कृष्टतम सौभाग्यशाली क्षण थे, जब मैं सन् १९६८ में पूज्य गुरुदेवश्री के और १९७० में डॉ. भारिल्लजी के सम्पर्क में आया। पूज्य गुरुदेवश्री से प्राप्त, दृष्टि के विषय, वस्तु स्वातन्त्र्य, क्रमबद्धपर्याय, निश्चय-व्यवहार, उपादाननिमित्त आदि अनेक विषयों को स्पष्ट रूप से समझकर उनका मर्म जानने का तथा उनके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण प्राप्त करने का अवसर माननीय डॉ. साहब का विद्यार्थी बनने से मुझे सहज ही प्राप्त हो गया। उन्होंने मुझे जुलाई, १९७७ से प्रारम्भ होनेवाले श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के प्रथम बैच में प्रवेश लेने हेतु न केवल प्रेरित किया, अपितु दिल खोलकर अपने तत्त्व-चिन्तन की गहराइयों से समृद्ध करने में कोई कसर नहीं रखी। एतदर्थ कृतज्ञता व्यक्त करने हेतु मैं स्वयं को शक्तिहीन अनुभव करता हूँ।

सन् १९८१ में शास्त्री परीक्षा पास करने के पश्चात् उन्होंने मुझे महाविद्यालय में अध्यापन करने का अवसर प्रदान करके मानों अमूल्य वरदान दे दिया। १७ वर्षों तक समयसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक, आप्त परीक्षा, आप्त मीमांसा, क्रमबद्धपर्याय, नयचक्र आदि ग्रन्थों को पढ़ाने का अवसर प्रदान करके उन्होंने मुझ पर जो उपकार किया है, उसका ऋण चुकाना संभव नहीं है।

उक्त ग्रन्थों का अध्यापन करते-करते स्वयं को उनकी अतल गहराइयों में जाकर भाव-भासन का जो अपूर्व लाभ प्राप्त हुआ है, उसके सम्मुख चक्रवर्ती की सम्पदा का

मूल्य भी नगण्य है। इस उपकार के समक्ष आभार जैसे शब्द तो बहुत तुच्छ मालूम पड़ते हैं।

जुलाई १९९८ में छिन्दवाड़ा प्रवास के पूर्व जब डॉ. साहब से इस सम्बन्ध में चर्चा की तो उन्होंने कहा - 'महाविद्यालय के छात्रों को पढ़ाने से वञ्चित रहने की क्षति सहन करना पड़ेगी'। उनका यह आकलन निरन्तर अनुभव करते हुए भी मैं इस क्षतिपूर्ति का प्रयास करता रहता हूँ।

इसी श्रृंखला में प्रतिवर्ष १० दिवसीय क्रमबद्धपर्याय-शिविर लगाने का प्रसंग बना। अब तक पूना, राजकोट, अहमदाबाद और कोटा में आयोजित इन शिविरों में जिज्ञासु समाज ने अपार उत्साह प्रदर्शित करते हुए इस विषय को गहराई से समझने का प्रयास किया। इन शिविरों में डॉ. साहब की अनुपम कृति क्रमबद्धपर्याय पढ़ाते समय यह आवश्यकता महसूस हुई कि यदि प्रशिक्षण निर्देशिका की शैली में इस पुस्तक की निर्देशिका लिखी जाए तो अन्य प्रवचनकार बन्धु, तथा महाविद्यालय के भूतपूर्व छात्र भी इस विषय को लघु-शिविरों में पढ़ाकर जन-जन तक पहुँचा सकेंगे।

इसप्रकार का यह मेरा पहला प्रयास था, अतः थोड़ा संकोच भी हुआ, परन्तु अनेक छात्रों की प्रबल प्रेरणा से साहस करके यह कार्य सन् २००१ में प्रारम्भ किया। बीना में आयोजित प्रशिक्षण-शिविर के अवसर पर आदरणीय डॉ. साहब को इसका थोड़ा अंश दिखाकर उनसे मार्ग-दर्शन भी प्राप्त किया। अनेक दुविधाओं के कारण यह कार्य बीच में रुक गया परन्तु क्रियाः परिणाम और अभिप्राय पुस्तक का लेखन कार्य और अन्य कार्य भी चलते रहे।

मुम्बई एवं अमेरिकावासी मुमुक्षु भाइयों के आग्रह से सन् २००२ से जून-जुलाई में अमेरिका-प्रवास का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया, जिसके फलस्वरूप क्रमबद्धपर्याय-शिविर बन्द हो गए। अतः इस निर्देशिका के लेखन के अधूरे कार्य को पूरा करने का विकल्प तीव्र हो गया जिसके फलस्वरूप यह क्रमबद्धपर्याय-निर्देशिका की कल्पना साकार हो रही है।

इसकी लेखन-शैली के सम्बन्ध में सर्वाधिक दुविधा यह रही कि पाठ्य-पुस्तक को छोटे-छोटे गद्यांशों में बांट कर प्रत्येक गद्यांश का स्पष्टीकरण किया जाए या सम्पूर्ण अनुशीलन को प्रश्नोत्तर-माला का रूप दे दिया जाए। विषय की विशेष स्पष्टता प्रथम विकल्प की पूर्ति में भासित हुई, जबकि वर्तमान में हर विषय को मात्र प्रश्नोत्तर के रूप में प्रस्तुत करने की पद्धति प्रचलित है। गहन-विचार विमर्श के फलस्वरूप यह निर्णय किया गया कि निर्देशिका के मूल भाग में गद्यांशों में समागत विचार-बिन्दुओं का उल्लेख करते हुए आवश्यकतानुसार विशेष स्पष्टीकरण किया जाए तथा उससे सम्बन्धित प्रश्न भी दिए जायें, ताकि छात्रगण उक्त प्रश्नों का उत्तर विचार-बिन्दु और स्पष्टीकरण में खोजकर लिखें। इससे विषय के सूक्ष्म चिन्तन में उनका उपयोग लगेगा, तथा वे विषय को गहराई से समझ सकेंगे।

उपर्युक्त पद्धति से सम्पूर्ण अनुशीलन को पढ़ाने में कम से कम १०० कालखण्ड (पीरियड) चाहिए जो शिविरों में सम्भव नहीं है। अतः लघु-शिविरों में शिक्षण के उद्देश्य से प्रश्नोत्तर-खण्ड अलग बनाया गया है। प्रश्नोत्तर खंड के भी दो भाग रखे गए हैं। (१) महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर (२) प्रासंगिक प्रश्नोत्तर। महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर में मूल विषय से सम्बन्धित २८ प्रश्नोत्तर दिए गए हैं, जिनके आधार पर ८-१० दिन के शिविरों में यह विषय अच्छी तरह पढ़ाया जा सकता है। प्रासंगिक प्रश्नोत्तरों में ऐसे विषयों की चर्चा है जो पाठ्यपुस्तक में क्रमबद्धपर्याय का स्पष्टीकरण करने के लिए प्रसंगवश आ गए हैं। जैसे - त्रिलक्षण परिणाम पद्धति, अनेकान्त में अनेकान्त, पाँच समवाय आदि। यदि समय हो तो इन प्रश्नोत्तरों को भी तैयार कराना चाहिए। श्री वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर में दोनों खण्डों के प्रश्नोत्तरों के आधार से पढ़ाया जा सकता है।

यदि स्थानीय स्तर पर इसका शिक्षण दिया जाए तो सम्पूर्ण निर्देशिका के आधार पर ३-४ माह में सम्पूर्ण पाठ्य पुस्तक अच्छी तरह पढ़ाई जा सकती है। एतदर्थ आगे दिए जा रहे सामान्य निर्देशों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

इस निर्देशिका में मैंने अपने १७ वर्षों के अध्यापन का तथा ४ क्रमबद्धपर्याय शिविरों का अनुभव लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है। इसमें मेरी यही भावना है कि अधिक से अधिक लोग इसके अध्ययन-अध्यापन में सक्रिय हों।

पूज्य गुरुदेवश्री भी इस विषय का विवेचन करते समय इसका निर्णय करने पर बहुत वजन देते थे। डॉ. साहब के जीवन में तो यह वरदान बनकर आया है। इसे जन-जन तक पहुँचाने के लिए सारा जीवन समर्पित करने योग्य है, क्योंकि इसके निमित्त से स्वयं का निर्णय स्पष्ट होगा, श्रद्धान दृढ़ होगा, तथा स्वभाव-सन्मुख दृष्टि करने का अवसर मिलेगा। अतः इस कार्य हेतु पक्की धुन लगाकर प्राण-प्रण से जुट जाना चाहिए।

प्रथम प्रयास होने से इसमें अनेक कमियाँ होना स्वाभाविक हैं, अतः गुरुजनों एवं सुधी पाठकों से विनम्र अनुरोध है कि वे अपने सुझावों से अवगत कराने की कृपा करें, ताकि उन पर गंभीरता से विचार करके उन्हें आगामी संस्करण में शामिल किया जा सके। इसके पश्चात् परमभाव प्रकाशक नयचक्र की निर्देशिका लिखते समय भी उन सुझावों का लाभ लिया जा सकेगा।

मुझे आशा है कि इस निर्देशिका की सहायता से सभी प्रवचनकार बन्धु तथा महाविद्यालय के छात्रगण अपने-अपने गाँव में यह विषय पढ़ाकर-बांटनवारे के लगे ज्यों मेंहदी को रंग - यह सूक्ति चरितार्थ करते हुए अपने श्रुतज्ञान में सर्वज्ञता की प्रतिष्ठा करके स्वयं सर्वज्ञ बनने के पथ पर चल पड़ेंगे। इति शुभं भूयात्।

- अभयकुमार जैन
एम.काम., जैनदर्शनाचार्य

मङ्गलाचरण

(क्रमबद्धपर्याय)

(दोहा)

क्रमनियमित क्रमबद्ध है, जग की सब पर्याय।
निर्णय हो सर्वज्ञ का, दृष्टि निज में आय।।

(वीरछन्द)

सकल द्रव्य के गुण अरु पर्यायों को जाने केवलज्ञान।
मानो उसमें डूब गये हों किन्तु न छूता उन्हें सुजान।।
जब जिसका जिसमें जिस थल में जिस विधि से होना जो कार्य।
तब उसका उसमें उस थल में उस विधि से होता वह कार्य।।

जन्म-मरण हो या सुख-दुःख हो अथवा हो संयोग-वियोग।
जैसे जाने हैं जिनवर ने वैसे ही सब होने योग्य।।
कोई न उनका कर्त्ता-हर्त्ता उनका होना वस्तु स्वभाव।
ज्ञान-कला में ज्ञेय झलकते किन्तु नहीं उसमें परभाव।।

अतः नहीं मैं पर का कर्त्ता और न पर में मेरा कार्य।
सहज, स्वयं, निज क्रम से होती है मुझमें मेरी पर्याय।।
पर्यायों से दृष्टि पलटती भासित हो ज्ञायक भगवान।
वस्तु स्वरूप बताया तुमने शत-शत वन्दन गुरु कहान।।

पाँच समवाय

(सोरठा)

प्रथम चार समवाय, उपादान की शक्ति हैं।
अरु पञ्चम समवाय, है निमित्त परवस्तु ही।।

(वीरछन्द)

गुण अनन्तमय द्रव्य सदा है, जो हैं उसके सहज स्वभाव।
जैसे गुण होते हैं वैसे, कार्यों का हो प्रादुर्भाव।।
जैसे तिल में तेल निकलता, नहीं निकलता है रज से।
चेतन की परिणति चेतनमय, जड़मय परिणति हो जड़ से।।
सब द्रव्यों में वीर्य शक्ति से, होता है प्रतिपल पुरुषार्थ।
अपनी परिणति में द्रवता है, उसमें तन्मय होकर अर्थ।।
निज स्वभाव सन्मुख होना ही, साध्य सिद्धि का सत् पुरुषार्थ।
पर–आश्रित परिणति में होता, बंध भाव दुखमय जो व्यर्थ।।
अपने–अपने निश्चित क्षण में, प्रतिपल होती हैं पर्याय।
हैं त्रिकाल रहती स्वकाल में कहते परम पूज्य जिनराय।।
है पदार्थ यद्यपि परिणमता इसीलिए कर्त्ता होता।
किन्तु कभी भी पर्यायों का क्रम विच्छेद नहीं होता।।
उभय हेतु से होने वाला कार्य कहा जिसका लक्षण।
वह भवितव्य अलंघ्य शक्तिमय, ज्ञानी अनुभवते प्रतिक्षण।।
जैसा जाना सर्वज्ञों ने वैसा होता है भवितव्य।
अनहोनी होती न कभी भी, जो समझे वह निश्चित भव्य।।
प्रति पदार्थ में है पुरुषार्थ, स्वभाव काललब्धि अरु कार्य।
कार्योत्पत्ति समय में जो, अनुकूल वही निमित्त स्वीकार।।
उपादान की परिणति जैसी, वैसा होता है उपचार।
सहज निमित्तरु नैमित्तिक, सम्बन्ध कहा जाता बहुबार।।

****

सामान्य निर्देश

क्रमबद्धपर्याय शिक्षण–प्रशिक्षण हेतु उपयोगी सामान्य निर्देश

(कृपया शिक्षण–कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व अध्यापकगण इन निर्देशों को अवश्य पढ़ लें)

१. क्रमबद्धपर्याय की चर्चा जन–जन में प्रचलित होती रहे, इस उद्देश्य से ८–१० दिन के क्रमबद्धपर्याय शिविर आयोजित होना प्रारंभ हो गए हैं। अधिक से अधिक अध्यापक–गण ऐसे शिविरों में तथा नियमित रूप से यह विषय पढ़ा सकें – इस उद्देश्य से यह निर्देशिका लिखी गई है।

२. इस निर्देशिका के माध्यम से पढ़ाते समय पाठ्य–पुस्तक साथ में रखना अनिवार्य है, क्योंकि उसके गद्यांशों को अनेक भागों में विभक्त करके निर्देशिका में मात्र उनके प्रारंभ और अन्त के वाक्यांश लिखे गये हैं, पूरा गद्यांश नहीं लिखा गया। ध्यान रहे, जिस प्रकरण पर विचार व्यक्त किये गये हैं, उसे गद्यांश कहा गया है।

३. गद्यांशों के पृष्ठ क्रमांक क्रमबद्धपर्याय पुस्तक के छठवें संस्करण से लिये गये हैं, अतः पढ़ाते समय छठवें या इसके बाद के संस्करणवाली पुस्तक साथ में रखना अधिक सुविधाजनक होगा।

४. पाठ्य अंश में समागत सैद्धान्तिक शब्दों की परिभाषा तथा उदाहरण आदि को स्वयं के चिन्तन के आधार से विशेष स्पष्टीकरण शीर्षक से दिया गया है।

५. 'विचार बिन्दु' और 'विशेष स्पष्टीकरण' की विषय–वस्तु को याद करने में सुविधा की दृष्टि से इन पर आधारित प्रश्न भी दिए गए हैं, जिनके आधार से उत्तर तैयार कराये जाना चाहिए।

६. सामान्यतया शिविरों में युवा छात्रों के साथ–साथ सैकड़ों प्रौढ़ एवं वृद्ध श्रोता भी उपस्थित होते हैं। प्रत्येक का स्वाध्याय तथा बौद्धिक स्तर भिन्न–भिन्न होता है। अतः कक्षा का वातावरण बनाने के लिए प्रश्नोत्तर लिखने वाले, कक्षा में प्रश्नों के उत्तर देने वाले तथा परीक्षा में बैठने वाले छात्रों को कक्षा में आगे बिठाना चाहिए। उनके बैठने का स्थान श्रोताओं के बैठने के स्थान से अलग दिखे – इस उद्देश्य से रस्सी आदि के माध्यम से स्थान का वर्गीकरण पहले से ही व्यवस्थापकों द्वारा करा लें।

७. छात्रों तथा श्रोताओं की अनुमानित संख्या के आधार पर पुस्तकें, कापियाँ तथा लिखने की सुविधा के लिए लकड़ी या गत्ते की व्यवस्था पहले से ही करा लेना चाहिए।

८. क्रमबद्धपर्याय पुस्तक उच्च स्तरीय शैक्षणिक स्तर की पुस्तक है। यह श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर में शास्त्री प्रथम वर्ष के छात्रों के पाठ्यक्रम में है। अतः इसे पढ़ाने में श्री वीतराग–विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण–प्रशिक्षण–शिविर के पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रशिक्षण–निर्देशिका के नियमों का पालन यथा सम्भव अवश्य करना चाहिए।

९. अधिकतम २५ छात्रों की कक्षा को पढ़ाने में ४५ मिनट के कम से कम १०० कालखण्ड (पीरियड़) चाहिए। इसमें प्रत्येक छात्र से छात्र-पठन कराने तथा उससे सम्बन्धित प्रश्न पूछने का पर्याप्त अवसर मिलता है। परन्तु प्रत्येक स्थान पर ऐसा नियमित शिक्षण सम्भव नहीं है। अतः ८-१० दिन के शिविरों में प्रतिदिन सुबह-शाम कम से कम एक-एक घण्टे का शिक्षण दिया जाना चाहिए। प्रश्नोत्तर के लिए १५-२० मिनिट अलग रखे जानी चाहिए।

१०. ऐसे शिविरों में पुस्तक का प्रत्येक अंश पढ़ाना, उसे समझाना तथा तत्सम्बन्धी प्रश्नोत्तर करना सम्भव नहीं है, अतः विषय से सीधे सम्बन्धित प्रकरणों की मुख्यता रखी जाए तथा आगमप्रमाणों एवं प्रासंगिक विषयों को गौण किया जाए, तभी अल्प समय में सम्पूर्ण विषय का शिक्षण देना सम्भव होगा।

११. क्रमबद्धपर्याय का अनुशीलन खण्ड ६७ पृष्ठों का महानिबन्ध है। पठन-पाठन में सुविधा की दृष्टि से इसे इस निर्देशिका में छोटे छोटे गद्यांशों में बाँटा गया है, तथा उन गद्यांशों का शीर्षक भी दिया गया है। किस दिन कितने गद्यांश पढ़ाना है, इसकी योजना पहले से निश्चित कर लेना चाहिए।

१२. यद्यपि सम्पूर्ण शिक्षण सत्र में प्रत्येक अंश का आदर्श-वाचन, अनुकरण वाचन आदि सभी सोपानों का प्रयोग करना आवश्यक है, तथापि ८-१० दिन के शिविर में यह संभव नहीं है; अतः प्रारंभ में समयानुसार १-२ अंशों का आदर्श वाचन करके छात्रों को आदर्श-पठन का नमूना बता देना चाहिए। फिर शेष अंश छात्रों से ही पढ़वाना चाहिए।

१३. 'छात्र-पठन' कराते समय प्रशिक्षण निर्देशिका में दिए गए 'अनुकरण वाचन' के सभी निर्देशों का पालन करना चाहिए।

१४. प्रतिपाद्य विषय के बाद दिए गए प्रश्नों को छात्रों से पूछा जाए। प्रश्न पूछने में छात्रों की योग्यतानुसार वस्तुनिष्ठ पद्धति के विविध सोपानों का नियमानुसार प्रयोग किए जाए। ये प्रश्न पहले से ही बोर्ड पर लिखे हों, ताकि छात्र उन्हें अपनी कॉपी में नोट कर सकें। इनके उत्तर पाठ्यपुस्तक अथवा निर्देशिका में दिए गए विचार बिन्दुओं के आधार पर छात्र स्वयं लिखें, यही सर्वश्रेष्ठ पद्धति है। यदि पर्याप्त समय हो तो अध्यापक कक्षा में ही इनके उत्तर लिखा सकते हैं। आजकल प्रश्नोत्तर टाइप कराके उनकी फोटो कॉपी वितरित की जाती है। यह अपवाद मार्ग है। १०-१५ दिवसीय शिविरों में समय व श्रम बचाने हेतु यह मार्ग भले अपनाया जाए, परन्तु नियमित शिक्षण-कक्षा में यह उचित नहीं है। अध्यापक प्रश्न लिखायें व छात्र उसके उत्तर लिखकर लायें तो विषय के चिंतन में उनका उपयोग भी लगेगा, जिससे उन्हें विषय का अच्छी तरह भाव-भासन हो सकेगा, तथा उन्हें प्रश्नोत्तर याद भी जल्दी हो जायेंगे।

****

विषय-प्रवेश

सर्वप्रथम आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का संक्षिप्त परिचय देकर उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों का उल्लेख करते हुए क्रमबद्धपर्याय विषय की चर्चा प्रारंभ की जाए, तथा इस विषय को समझने की आवश्यकता प्रतिपादित की जाए। एतदर्थ निम्न आशय के विचार व्यक्त किये जायें :-

''आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की मंगल वाणी के प्रताप से इस युग में अभूतपूर्व आध्यात्मिक क्रान्ति का सृजन हुआ। पूज्य गुरुदेवश्री के सातिशय प्रभावना योग में वीतराग दिगम्बर जैन धर्म के प्रचार-प्रसार की जो गतिविधियाँ समाज में चल रही हैं, वे सर्वविदित हैं। उनके प्रवचनों के माध्यम से समाज में सात तत्व, सम्यग्दर्शन व उसका विषय, कर्त्ता-कर्म, निमित्त-उपादान, षट्कारक निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, अकर्त्तावाद, पाँच समवाय, अनेकान्त-स्याद्वाद, रत्नत्रय आदि अनेक विषयों को समझने की न केवल जिज्ञासा जागृत हुई, अपितु हजारों-लाखों लोगों में इन विषयों की यथार्थ समझ भी विकसित हुई है। दिगम्बर समाज में विद्यमान सैकड़ों आध्यात्मिक प्रवक्ता, सैकड़ों स्वाध्याय सभायें एवं हजारों स्वाध्यायी आत्मार्थी भाई-बहनों के रूप में हम इस आध्यात्मिक क्रान्ति का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं।

वैसे तो पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाए गए जिनागम के सभी विषयों की चर्चा और उनका पठन-पाठन समाज में चल रहा है; परंतु उनमें 'क्रमबद्धपर्याय' सर्वाधिक चर्चित विषय है। पूज्य गुरुदेवश्री स्वयं अपने प्रवचनों में ''जे द्रव्यनी, जे काले, जे पर्याय, जे निमित्तनी हैयाती मा जेम थवानी छे; तेज द्रव्यनी, तेज काले, तेज पर्याय, तेज निमित्तनी हैयाती मा तेमज थया बिना रहेशे नहीं ''.... इन शब्दों के माध्यम से अत्यंत प्रमोद भाव से इस विषय की चर्चा किया करते थे। वे अपने प्रवचनों में इस विषय को समझकर सर्वज्ञता का निर्णय करने पर बहुत वजन देते थे। उन्हें इस सिद्धान्त की श्रद्धा स्थानकवासी साधु अवस्था में ही जिनागम के आधार पर स्वयं के चिन्तन मनन एवं पूर्व संस्कार से हो गई थी। इस सन्दर्भ में वे स्वयं एक घटना की चर्चा करते थे; जिसका भाव निम्नानुसार है -

''हमारे एक गुरुभाई मूलचन्दजी ने सन् १९१६ में पालियाद के पास सरवा गाँव में चर्चा करते हुये हम से कहा – ''यदि भगवान ने हमारे अनंत भव देखे हैं, तो हम चाहे कितना भी पुरुषार्थ करें, परंतु हमारा एक भी भव कम नहीं होगा।'' इससे पहले भी वे अनेक बार ऐसी पुरुषार्थ-हीनता की बात कह चुके थे।

एक बार मैंने उससे कहा – ''भाई! लोकालोक को जानने वाले सर्वज्ञ की सत्ता जगत में है – ऐसी श्रद्धा क्या तुमको है? जगत में सर्वज्ञ है – ऐसा निर्णय क्या तुम्हे है? क्योंकि जिसे सर्वज्ञ की सत्ता स्वीकार है, उसकी दृष्टि स्वभाव-सन्मुख हो जाती है, और भगवान ने उसके अनंत भव देखे ही नहीं हैं।''

इस घटना से ज्ञात होता है कि पूज्य गुरुदेवश्री की इस सिद्धान्त पर कितनी दृढ़ श्रद्धा थी। उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्क से सिद्ध होता है कि क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा में **सर्वज्ञ की श्रद्धारूप व्यवहारसम्यक्त्व** और **सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा की श्रद्धारूप निश्चयसम्यक्त्व** अर्थात् मुक्ति के मार्ग का सच्चा पुरुषार्थ गर्भित है।

यदि हम आत्मकल्याण करना चाहते हैं, मुक्ति प्राप्त करके अनंत अतीन्द्रिय निराकुल सुख प्रगट करना चाहते हैं, तो हम निष्पक्ष हृदय से इस सिद्धांत को गहराई से समझें। इस सिद्धांत को समझने से हमें सर्वज्ञता, वस्तुस्वातन्त्र्य, सम्यक्-पुरुषार्थ, अकर्त्तावाद, पाँच समवाय आदि अनेक प्रयोजनभूत विषय भी समझ में आयेंगे। इसीलिए 'क्रमबद्धपर्याय' की विशेष कक्षा यहाँ प्रारंभ की जा रही है।''

इसप्रकार समयानुसार इस प्रकरण पर संक्षेप या विस्तार से प्रकाश डालें।

(नोट :– यदि समय की अनुकूलता हो तो पाठ्य-पुस्तक का 'प्रकाशकीय' पढ़कर विस्तृत भूमिका बनाई जा सकती है। अन्यथा छात्रों को उसे पढ़ने की प्रेरणा अवश्य देना चाहिए।)

****

अध्याय १

अपनी बात

लेखक ने सर्वप्रथम अपनी बात लिखकर अपने जीवन के उन पहलुओं पर प्रकाश डाला है, जो क्रमबद्धपर्याय से सम्बन्धित हैं। उन्होंने क्रमबद्धपर्याय के सन्दर्भ में उत्पन्न शंका से प्रारंभ करके पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समागम में आकर 'क्रमबद्धपर्याय' पुस्तक लिखने तक की सभी घटनाओं का उल्लेख करते हुए अपने जीवन में इस सिद्धान्त का सर्वोपरि स्थान निरूपित किया है।

हम सभी को लेखक के जीवन से इस विषय को समझकर आत्मकल्याण करने की प्रेरणा मिले – इस उद्देश्य से इस प्रकरण पर चर्चा की जा रही है।

'क्रमबद्धपर्याय' का शिक्षण 'अपनी बात' से प्रारंभ कर देना चाहिए। सर्वप्रथम 'अपनी बात' के संबंध में अध्यापक निम्नानुसार विशेष परिचय दें –

यद्यपि क्रमबद्धपर्याय जिनागम में प्रतिपादित मौलिक सिद्धांत है, जिसे इस युग में आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने प्रस्तुत किया है; तथापि इस सिद्धांत को आगम और युक्तिसंगत तर्कप्रधान शैली में प्रस्तुत करने का श्रेय डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल को है। उन्होंने स्वयं इस विषय का गहराई से चिन्तन और मंथन करके इसका अमृतपान किया है, तथा अपने गंभीर चिंतन से इस सिद्धान्त के विरुद्ध प्रस्तुत किए जाने वाले तर्कों का समाधान किया है। जब यह पुस्तक लिखी जा रही थी, तब वे प्रवचनों में भी प्रायः इसी विषय की चर्चा करते थे। विदेशों में भी प्रायः इसी विषय की चर्चा धाराप्रवाह अनेक वर्षों तक चली। अतः अनेक वर्षों तक मुमुक्षु समाज का वातावरण क्रमबद्धपर्याय की चर्चा से ओतप्रोत रहा। अभी भी यह धारा चालू है। यद्यपि अन्य अनेक विद्वान भी इस विषय की चर्चा करते हैं, तथापि उसे मौलिक ढंग से प्रस्तुत करने के कारण इसका श्रेय डॉ. साहब को ही है,

इसीलिए अब कुछ लोग उनसे 'आपकी क्रमबद्धपर्याय' ऐसा कहकर भी सम्बोधन करते हैं।

प्रस्तुत लेख में डॉ. साहब ने उन्मुक्त हृदय से यह बात स्वीकार की है कि क्रमबद्धपर्याय समझने से ही उनके चिन्तन को सही दिशा मिली है, उससे उनका जीवन ही बदल गया है।

पूज्य स्वामीजी से भी डॉ. साहब का परिचय उनके 'क्रमबद्धपर्याय' विषय पर हुए प्रवचनों को पढ़कर हुआ। यह भी एक सुखद संयोग है कि डॉ. साहब की कृति 'धर्म के दशलक्षण' और 'क्रमबद्धपर्याय' से स्वामीजी भी विशेष प्रभावित हुए। उन्होंने अपने प्रवचनों में सैकड़ों बार इन कृतियों का उल्लेख करते हुए डॉ. साहब की खुलकर प्रशंसा की है।

सन् १९७९ में बड़ौदा में आयोजित पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में रात्रि चर्चा के समय डॉ. साहब को मञ्च पर बुलाकर अपने पास बिठाते हुए स्वामीजी ने कहा – 'तुम यहाँ ऊपर ही बैठा करो।' फिर सभा को सम्बोधित करते हुए कहा – 'इसने क्रमबद्धपर्याय पुस्तक लिखकर समाज का बहुत उपकार किया है।'

इसमें सन्देह नहीं कि इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद दिगम्बर समाज के अनेक विद्वान भी इस विषय पर गम्भीरता से विचार करने हेतु प्रेरित हुए। जो लोग इस सिद्धान्त से सहमत नहीं थे, उन्होंने भी इसके पक्ष में अपनी सहमति भेजी।

इसप्रकार इस युग में क्रमबद्धपर्याय सिद्धान्त को डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व से अलग नहीं देखा जा सकता। इसलिए इस लेख के माध्यम से डॉ. साहब के जीवन और चिंतन के अचर्चित बिन्दुओं को समझना अत्यंत आवश्यक है। इसमें हमें भी इस विषय को गहराई से समझने की प्रेरणा मिलेगी।''

विशेष निर्देश :– सम्पूर्ण लेख को ४–५ गद्यांशों में विभाजित करके एक–एक गद्यांश का यथासंभव छात्र–पठन कराना चाहिए।

पठित गद्यांश में व्यक्त किए गए विचारों की संक्षेप में चर्चा करें तथा आवश्यकतानुसार प्रश्न भी पूछें। यहाँ प्रस्तुत लेख के गद्यांशों का संकेत करके उनमें प्रतिपादित विचार–बिन्दुओं का उल्लेख करते हुए प्रश्न दिये जा रहे हैं।

गद्यांश १

क्रमबद्धपर्याय औरों के लिए................................बात करनी होगी।

(पृष्ठ IX पैरा १ से ४ तक)

विचार बिन्दु :– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक की दृष्टि में क्रमबद्धपर्याय विषय की कितनी महिमा है – इसका उल्लेख किया गया है। इसे जन–जन तक पहुँचाने का संकल्प व्यक्त करते हुए वे सभी लोगों से इस विषय पर निष्पक्ष एवं गंभीर विचार मंथन की अपेक्षा रखते हैं।

प्रश्न :–

१. लेखक की दृष्टि में क्रमबद्धपर्याय का क्या महत्व है?

२. इस विषय पर चर्चा के बारे में लेखक का क्या दृष्टिकोण है?

****

गद्यांश २

मेरी समझ में यह कैसे...................................लाभ भी प्राप्त हुआ।

(पृष्ठ IX पैरा ५ से पृष्ठ XI पैरा ११ तक)

विचार बिन्दु :– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने अपने जीवन की उस घटना का उल्लेख किया है, जिसके माध्यम से उन्हें क्रमबद्धपर्याय एवं उसके प्रस्तुतकर्ता आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्यश्री कानजीस्वामी का परिचय हुआ। आत्मधर्म में स्वामीजी के तेरह प्रवचन पढ़ने के बाद उन्हें जो आध्यात्मिक उपलब्धि हुई और उनकी जीवनचर्या में जो परिवर्तन आया, उसका उन्होंने खुलकर वर्णन किया है।

विशेष निर्देश :– इसका रस कुछ ऐसा लगा कि चढ़ती उम्र के सभी रस फीके हो गए – इस वाक्यांश पर विशेष ध्यान आकर्षित किया जाए।

प्रश्न :–

३. लेखक के जीवन में 'क्रमबद्धपर्याय' सम्बन्धी चर्चा कैसे प्रारंभ हुई?

४. आत्मधर्म के प्रवचनों को पढ़कर लेखक पर क्या प्रभाव पड़ा?

****

गद्यांश ३

सर्वप्रथम स्वामीजी..............................हम दोनों सहोदर सोनगढ़ गए।

(पृष्ठ XI पैरा २ से पृष्ठ XII पैरा ३ तक)

विचार बिन्दु :– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक को स्वामीजी के प्रथम दर्शन होने के प्रसंग का उल्लेख है। उन्होंने १९५७ में बबीना, सोनगिर और चांदखेड़ी में स्वामीजी के प्रवचनों का लाभ लिया और अपनी सर्वप्रथम कृति देव-शास्त्र-गुरु पूजन उन्हें भेंट की। स्वामीजी द्वारा सोनगढ़ आने का निमंत्रण मिलने का वर्णन भी अत्यन्त रोमाञ्चक है।

प्रश्न :–

५. *लेखक स्वामीजी के परिचय में किस प्रकार आए? सभी प्रसंगों का क्रमबद्ध उल्लेख कीजिए?*

६. *लेखक की सर्वप्रथम प्रकाशित कृति कौन-सी थी तथा उसकी क्या विशेषता थी?*

७. *स्वामीजी ने लेखक को सोनगढ़ आने का निमंत्रण क्यों दिया?*

****

गद्यांश ४

क्रमबद्धपर्याय की बात...........................में आने का काल पक गया था।

(पृष्ठ XII पैरा ४ से सम्पूर्ण)

विचार बिन्दु :– इस गद्यांश में लेखक ने क्रमबद्धपर्याय का परिचय होने से पूर्व अपनी कमियों और विशेषताओं का निःसंकोच वर्णन किया है। 'समझ में शास्त्रों का मर्म तो नहीं, पर मान तो आ ही गया था' इस वाक्य के माध्यम से उन्होंने अपनी कमजोरी बताते हुए इस तथ्य की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है कि आध्यात्मिक रुचि के बिना शास्त्रज्ञान किसप्रकार कषायपोषक हो जाता है।

प्रश्न :–

८. *क्रमबद्धपर्याय की बात समझने से पूर्व लेखक की विशेषताओं और कमियों का उल्लेख करते हुए उनका कारण भी बताइये?*

९. *क्रमबद्धपर्याय की बात लेखक की समझ में कैसे आई?*

****

गद्यांश ५

इसके बाद तो इसी कारण...........................अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

(पृष्ठ XIII पैरा १ से पृष्ठ XIV पैरा १ तक)

विचार बिन्दु :– इस गद्यांश में क्रमबद्धपर्याय की बात समझने से लेखक को जो लाभ हुआ, उसका वर्णन किया गया है। क्रमबद्धपर्याय पुस्तक लिखना कैसे प्रारम्भ हुआ, इसकी चर्चा करते हुए, पाठकों से इसे बार-बार पढ़ने और विचार-मंथन करने का अनुरोध किया गया है, तथा इसकी श्रद्धा से मुक्ति का मार्ग किसप्रकार प्रगट होता है – यह भी बताते हुए विरोध करने वालों को भी इसे स्वीकार करने की प्रेरणा दी है।

प्रश्न :–

१०. *क्रमबद्धपर्याय समझने से लेखक को कैसा अनुभव हुआ?*

११. *क्रमबद्धपर्याय की स्वीकृति में जीत है, हार है ही नहीं – इस कथन का आशय स्पष्ट कीजिए?*

१२. *यह कृति लिखने की प्रेरणा लेखक को कैसे मिली?*

१३. *लेखक अपने श्रम की सार्थकता किसमें समझते हैं?*

****

गद्यांश ६

इसके लिखने में मैं...........................होकर अनन्त सुखी हो।

(पृष्ठ XIV पैरा २ से पृष्ठ XXI सम्पूर्ण)

विचार बिन्दु :– इस गद्यांश में लेखक ने प्रस्तुत कृति के प्रारम्भ से पूर्णता तक सभी बिन्दुओं का वर्णन करते हुए यह भी बताया है कि उन्होंने इसे

निबन्ध के रूप में समाज के विद्वानों के पास दो बार भेजा, ताकि उनके सुझावों पर गम्भीरता से विचार करके उन्हें इसमें शामिल किया जा सके। प्रस्तुत कृति को उन्होंने किस प्रकार सर्वाङ्ग सुन्दरता और परिपूर्णता प्रदान की है – इसकी चर्चा भी की गई है। पुस्तक के दोनों खण्डों और परिशिष्टों का परिचय भी दिया गया है।

सन् १९७९ लेखक के लिए क्रमबद्धपर्याय वर्ष हो गया था। अन्त में उन्होंने विद्वानों से इसकी कमियों की ओर ध्यान आकर्षित करने का पुनः अनुरोध किया है, क्योंकि वे इस विषय को अत्यन्त महत्वपूर्ण और गम्भीर मानते हैं, तथा इसे निर्विवाद रूप से सर्वाङ्ग सुन्दर प्रस्तुत करना चाहते हैं "सारा जगत क्रमबद्धपर्याय का सही स्वरूप समझकर अनन्त सुखी हो" यह भावना व्यक्त करते हुए उन्होंने अपनी बात समाप्त की है।

प्रश्न :–

१४. इस कृति को लिखते समय लेखक ने क्या सजगता रखी?

१५. इसे सर्वांङ्गीण बनाने के लिए लेखक ने क्या प्रयास किये?

१६. सन् १९७९ लेखक के लिए क्रमबद्धपर्याय वर्ष क्यों बन गया?

१७. इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में लेखक की अन्तर–भावना क्या है?

****

भगवान तुम्हारी वाणी में जैसा जो तत्त्व दिखाया है।
जो होना है सो निश्चित है केवलज्ञानी ने गाया है।।
उस पर तो श्रद्धा ला न सका परिवर्तन का अभिमान किया।
बनकर पर का कर्त्ता अब तक सत् का न प्रभो सन्मान किया।।

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : देव–शास्त्र–गुरु पूजन

अध्याय २

क्रमबद्धपर्याय : एक अनुशीलन

भूमिका

गद्यांश १

क्रमबद्धपर्याय आज दिगम्बर............................अनुशीलन अपेक्षित है

(पृष्ठ १ पैरा १ और २)

विचार बिन्दु :–

इस गद्यांश में लेखक ने पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा अध्यात्म जगत में किए गए क्रान्ति के शंखनाद के फलस्वरूप इस विषय के बहुचर्चित होने का उल्लेख करते हुए चिन्ता प्रकट की है, कि अभी भी इस विषय पर गहन विचार–मन्थन की प्रवृत्ति का अभाव है।

इस विषय को महान दार्शनिक उपलब्धि निरूपित करते हुए उन्होंने खेद व्यक्त किया है कि इसे व्यर्थ के वाद–विवाद हँसी–मजाक एवं सामाजिक राजनीतिक का विषय बना लिया गया है। वे चाहते हैं कि इस पर विशुद्ध दार्शनिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विचार किया जाए, अतः यहाँ जिनागम के परिप्रेक्ष्य में युक्ति एवं उदाहरण सहित अनुशीलन प्रस्तुत किया जा रहा है।

विशेष स्पष्टीकरण :– उक्त विचार में समागत बिन्दुओं का निम्नानुसार स्पष्टीकरण किया जाए –

(अ) सामाजिक राजनीति :– समाज में अनेक प्रकार के ग्रुप व पन्थ आदि प्रचलित हैं, अतः उनके पक्ष–विपक्ष से ग्रस्त होने के कारण लोग इस सिद्धान्त के पक्ष या विरोध में हो जाते हैं, इस विषय पर आगम और युक्ति के आधार पर विचार नहीं करते हैं।

(ब) हँसी मजाक :– अपनी गल्तियों को छिपाने के लिए लोग 'क्रमबद्ध' में ऐसा ही होना था – ऐसा कहते हुए हँसकर टाल देते हैं। इस प्रवृत्ति से

जिनागम के अविनय का महादोष होता है। अतः जिनागम के किसी भी सिद्धान्त को मनोरंजन का विषय न बनायें। इसका आशय यह नहीं है कि इसकी चर्चा न करें, बल्कि यह है कि इसकी चर्चा से हास्य का पोषण न करें, अपितु पर्याय की कर्त्ताबुद्धि तोड़कर पर्यायों से दृष्टि हटाकर स्वभाव-सन्मुख होने का प्रयत्न करें।

(स) जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में :- यद्यपि अन्य दर्शनों में भी क्रमबद्धपर्याय की बात आती है। आज अन्य मत के अनेक प्रवक्ता भी इसकी चर्चा करते देखे जाते हैं, परन्तु उनमें पूर्वापर विरोध है। जैनदर्शन में सर्वज्ञता और वस्तु व्यवस्था के आधार पर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जाता है, अतः यहाँ जिनागम में उपलब्ध प्रमाणों और युक्तियों के आधार पर क्रमबद्धपर्याय का अनुशीलन किया जा रहा है।

प्रश्न :-

१. क्रमबद्धपर्याय के सन्दर्भ में समाज का वर्तमान वातावरण कैसा है?

२. क्रमबद्धपर्याय को चर्चित करने में पूज्य स्वामीजी का क्या योगदान है?

३. समाज के वर्तमान वातावरण के सम्बन्ध में लेखक की क्या भावना है?

विषय-परिचय

गद्यांश २

क्रमबद्धपर्याय से आशय......................दूसरे का कोई भी हस्तक्षेप नहीं है।

(पृष्ठ १ पैरा ३ से पृष्ठ २ पैरा ४ तक)

विचार बिन्दु :-

प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने क्रमबद्धपर्याय का आशय स्पष्ट करते हुए समझाया है कि प्रत्येक वस्तु का परिणमन क्रमानुसार, नियमित, व्यवस्थित और स्वतंत्र होता है।

नाटक के रंगमंच पर दिखाई जानेवाली रईस की कोठी और गरीब की झोपड़ी

के उदाहरण से यह समझाया गया है, कि वस्तु का परिणमन पूर्व निश्चित और व्यवस्थित है। वह हमें अज्ञान और राग-द्वेष के कारण वह अव्यवस्थित दिखाई देता है।

२. वस्तु की परिणमन-व्यवस्था की चार विशेषतायें हैं :-

(अ) क्रम से होना (ब) नियमित होना

(स) व्यवस्थित होना (द) स्वतंत्र होना

इन विशेषताओं का आशय निम्नानुसार है :-

(अ) वस्तु की पर्यायें क्रम से अर्थात् जिसके बाद एक होती हैं।

(ब) यह परिणमन नियमित है अर्थात् जिसके बाद जो पर्याय होनेवाली है; वही होगी, अन्य नहीं।

उदाहरण :- किसी सभा में छात्रों को पुरस्कार लेने के लिए बुलाया जाए, तो सभी छात्र एक के बाद एक तो आयेंगे ही, परन्तु जिसके बाद जिसको बुलाया जाएगा, वही आयेगा, अन्य नहीं; क्रम-नियमित विशेषता का यही अर्थ है।

(स) वस्तु के परिणमन का नियमित क्रम, व्यवस्थित भी होता है; अर्थात् उन छात्रों को अधिक अंक प्राप्त करनेवालों के क्रम से बुलाया जाएगा। अथवा यदि किसी सभा में मञ्चासीन व्यक्तियों का स्वागत करना हो तो उसका क्रम व्यवस्थित होता है; अर्थात् सर्वप्रथम अध्यक्ष, फिर मुख्य-अतिथि, फिर उद्घाटनकर्ता फिर विशिष्ट अतिथि आदि का व्यवस्थित क्रम होना आवश्यक है। इसीप्रकार बालक, युवा और वृद्धावस्थारूप मनुष्य की अवस्था का व्यवस्थित क्रम है, इससे विपरीत क्रम असम्भव है।

३. व्यवस्थित क्या है और अव्यवस्थित क्या है?

वास्तव में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का उचित समायोजन ही व्यवस्थितपने

का सूचक है तथा उनमें असंतुलन अव्यवस्थितपने का सूचक है। घर में प्रत्येक वस्तु निश्चित स्थान पर ही हो, प्रत्येक कार्य समय पर हो, तो वह घर व्यवस्थित है, यदि घर में वस्तुयें यथा-स्थान न हों तो वह अव्यवस्थित है।

हमारी धारणा या जगत की परम्परानुसार जो कार्य समय पर हो तो हम उन्हें व्यवस्थित समझते हैं। ७०-८० वर्ष की उम्र में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाए, युवावस्था में भी कोई केन्सर से चल बसे, पुरुष को दाढ़ी-मूछें हों, फल व अनाज समय पर हो - यह सब हमें व्यवस्थित लगता है। परन्तु इसके विपरीत हो अर्थात् किसी युवक का हार्ट-फेल हो जाए, महिला को दाढ़ी-मूँछ आ जाये, सर्दियों में आम और गर्मियों में जाम पकने लगें, तो हम इसे अव्यवस्थित समझेंगे। क्रमबद्धपर्याय का सिद्धान्त कहता है कि जगत की जो-जो घटनाएँ हमें अव्यवस्थित दिखाई देती हैं, वे भी वस्तु की परिणमन व्यवस्था के व्यवस्थित क्रम में ही हैं। वे अव्यवस्थित तो हमें इसीलिए लगती हैं, कि हमारी धारणा या इच्छा वैसी नहीं है।

(द) वस्तु का परिणमन, क्रम-नियमित और व्यवस्थित होने के साथ-साथ स्वाधीन भी है। यह ध्यान देने की बात है कि यदि हमारी इच्छानुसार वस्तु परिणमित होने लगे तो वह हमारी इच्छा के आधीन हो गई, स्वाधीन कहाँ रही, अतः स्वतंत्रता से आशय इच्छानुसार परिणमन से नहीं, अपितु वस्तु की तत्समय की योग्यतानुसार परिणमन से है।

इसप्रकार 'क्रमबद्धपर्याय' से आशय प्रत्येक वस्तु के क्रमिक, नियमित, व्यवस्थित और स्वाधीन परिणमन के नियम से है।

प्रश्न :-

४. *वस्तु के परिणमन की चारों विशेषताओं को बताते हुए प्रत्येक का आशय स्पष्ट कीजिए?*

****

क्रमबद्धपर्याय पोषक आगम-प्रमाण

गद्यांश ३

जैसा कि सर्वश्रेष्ठ...सबसे प्रबल हेतु है

(पृष्ठ २ पैरा ५ से पृष्ठ ५ पैरा ५ तक)

विचार बिन्दु :-

१. इस गद्यांश में लेखक द्वारा सात आगम प्रमाण प्रस्तुत किये गए हैं।

२. 'क्रम' शब्द से आशय क्रमाभिव्यक्ति से है और 'नियमित' शब्द से आशय प्रत्येक पर्याय अपने स्वकाल में अपने-अपने निश्चित उपादान के अनुसार परिणमित होने से है। पर्याय के उत्पन्न होने की उसकी तत्समय की योग्यता ही निश्चय उपादान है। संक्षेप में कहा जाए तो वस्तु के सुनिश्चित क्रम में स्वाधीनरूप से परिणमन करने की व्यवस्था को क्रमबद्धपर्याय कहते हैं।

३. 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' के अनुसार उक्त परिभाषा का आशय निम्नानुसार है।

''जिस द्रव्य की, जिस क्षेत्र में 'जिस काल में' जो पर्याय, जिस विधि से, जिस निमित्त की उपस्थिति में होना सर्वज्ञदेव ने जाना है, उस द्रव्य की, उसी क्षेत्र में 'उसी काल में' वही पर्याय, उसी विधि से, उन्हीं निमित्तों की उपस्थिति में होगी।'' वस्तु के परिणमन की इस व्यवस्था को 'क्रमबद्धपर्याय' कहते हैं।

इस परिभाषा में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पुरुषार्थ, निमित्त आदि सभी का एकत्र होना सुनिश्चित है - यह भी बताया गया है।

४. क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि में सर्वज्ञता सबसे प्रबल हेतु है।

५. क्रमनियमित और 'क्रमबद्ध' एकार्थवाची हैं।

७. विशेष निर्देश :-

१. प्रत्येक आगम-प्रमाण पर समयानुसार यथा-सम्भव चर्चा की जाए, तथा उपर्युक्त विचारों पर विशेष बल दिया जाए।

२. नियमित शिक्षण-सत्र की कक्षाओं में छात्रों से पाठ्य पुस्तक में समागत आगम प्रमाणों की तालिका (चार्ट) बनवाई जाए, जिसमें निम्न खण्ड हो

सकते हैं –

i. क्रमांक

ii. पाठ्यपुस्तक में सम्बन्धित प्रकरण की पृष्ठ संख्या

iii. ग्रन्थ का नाम/गाथा

iv. ग्रन्थ का वाक्यांश

v. प्रयोजन अर्थात् वह आगम प्रमाण किस सिद्धान्त की पुष्टि हेतु दिया गया है।

८. **विशेष स्पष्टीकरण :–**

सर्वज्ञता को क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि में सबसे प्रबल हेतु बताया गया है। यहाँ न्याय-ग्रन्थों में वर्णित अनुमान प्रयोग में हेतु और साध्य के अनुसार स्पष्टीकरण किया जाना चाहिए।

धुएँ से अग्नि की सत्ता का ज्ञान किया जाता है, क्योंकि वह अग्नि से अविनाभावी है, अर्थात् अग्नि के होने पर ही होता है, अग्नि के बिना नहीं होता, इसलिए अग्नि की सिद्धि अर्थात् अग्नि के ज्ञान में धुँआ सर्वाधिक प्रबल हेतु है। इसीप्रकार सर्वज्ञता का स्वरूप जानने से ही क्रमबद्धपर्याय को जाना जा सकता है, क्योंकि वस्तु का परिणमन सर्वज्ञ के ज्ञानानुसार ही होता है, उससे विरुद्ध नहीं।

जिसप्रकार अग्नि के होने पर ही धुँआ होता है, यदि अग्नि न होती तो धुँआ कैसे होता? इसीलिए धुँआ अग्नि की सिद्धि करने में हेतु है। उसीप्रकार प्रत्येक वस्तु के क्रमबद्ध परिणमन को सम्पूर्ण जानने से ही भगवान सर्वज्ञ हैं, यदि वस्तु का परिणमन क्रमबद्ध नियमित न होता तो भगवान उसे जानते कैसे? अतः केवली भगवान द्वारा वस्तु का जानना ही उसके सुनिश्चित परिणमन को सिद्ध करता है।

इसप्रकार यह स्पष्ट है कि सर्वज्ञ भगवान प्रत्येक वस्तु का त्रैकालिक स्वरूप जानते हैं, इससे ही परिणमन का सुनिश्चित क्रम सिद्ध हो जाता है; इसीलिए सर्वज्ञता को क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि में प्रबल हेतु कहा गया है।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि जिसप्रकार धुँआ अग्नि का ज्ञान कराता है, अग्नि को उत्पन्न नहीं करता; अतः वह अग्नि का ज्ञापक-हेतु है, कारक-हेतु

नहीं। उसीप्रकार सर्वज्ञता से क्रमबद्ध-व्यवस्था का ज्ञान होता है, सर्वज्ञ भगवान वस्तु के परिणमन के कर्त्ता नहीं हैं और उसका क्रम भी निश्चित नहीं करते, अपितु उसे जानने मात्र हैं। सर्वज्ञता दर्पण है तो वस्तु व्यवस्था वह पदार्थ है, जिसका प्रतिबिम्ब सर्वज्ञतारूपी दर्पण में पड़ता है। अतः सर्वज्ञता क्रमबद्धपर्याय का ज्ञापक हेतु है, कारक हेतु नहीं। सर्वज्ञ का ज्ञान और वस्तु का परिणमन दोनों स्वतंत्र हैं, कोई किसी के आधीन नहीं है।

यहाँ प्रश्न है कि सर्वज्ञ भगवान सब कुछ जानते हैं, तो पर्यायें क्रमबद्ध सिद्ध होती हैं, परन्तु हम तो नहीं जानते; अतः हमारे क्षयोपशम ज्ञान की अपेक्षा पर्यायों का क्रम अनियमित माना जाए? परन्तु भाई! हमारे न जानने से परिणमन अनियमित कैसे हो जाएगा? हमारे ज्ञान में पदार्थों के परिणमन का क्रम ज्ञात न होना हमारे अज्ञान का सूचक है, पदार्थों के अनियमित परिणमन का नहीं।

प्रश्न :–

५. *क्रमबद्धपर्याय किसे कहते हैं?*

६. *सर्वज्ञता को क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि में हेतु क्यों कहा गया है?*

७. *सर्वज्ञता द्वारा क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि कैसे होती है?*

८. *हम वस्तु के परिणमन का क्रम नहीं जानते, इस अपेक्षा पर्यायों का क्रम अनियमित है – क्या यह मान्यता सही है?*

****

अज्ञानी द्वारा सर्वज्ञता का विरोध

गद्यांश ४

निष्पन्न पर्यायों की..रास्ते निकालता है।

(पृष्ठ ५ पैरा ६ से पृष्ठ ६ पैरा २ तक)

विचार बिन्दु :–

१. जब भविष्य को निश्चित कहा जाता है, तो अज्ञानी चौंक उठता है, क्योंकि इसमें कर्त्तापने के अभिमान को चोट पहुँचती है। वह सर्वज्ञ की सत्ता से

इन्कार भी नहीं कर पाता, अतः सर्वज्ञता की व्याख्यायें बदलने लगता है, ताकि सर्वज्ञता का निषेध भी नहीं हो, और कर्तृत्व का अभिमान भी सुरक्षित रह जाए।

२. **विशेष स्पष्टीकरण :–**

अज्ञानी सर्वज्ञता को हृदय से स्वीकार करता है, बुद्धि से नहीं इसका आशय यह है कि यह जीव कुल–मान्यता से या परम्परागत श्रद्धा से तथा आगम के आधार पर यह तो मानता है कि जगत में सर्वज्ञ हैं, परन्तु तर्क और युक्ति से सर्वज्ञ स्वभाव की श्रद्धापूर्वक और अकर्ता स्वभाव की दृष्टि पूर्वक सर्वज्ञ की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। अतः जब सर्वज्ञ की श्रद्धा से यह फलितार्थ निकलता है कि प्रत्येक पर्याय की उत्पत्ति निश्चित समय में होती है, तो उसकी परम्परागत श्रद्धा को ठेस पहुँचती है।

प्रश्न :–

१. *भविष्य की पर्यायों के उत्पत्ति का समय भी निश्चित है – ऐसा कहने पर अज्ञानी की क्या प्रतिक्रिया होती है?*

****

सर्वज्ञता–पोषक आगम प्रमाण

गद्यांश ५

पर उसका यह अथक...सानुरोध आग्रह है।

(पृष्ठ ६ पैरा ३ से पृष्ठ १० पैरा २ तक)

विचार बिन्दु :–

१. अज्ञानी यह सिद्ध करना चाहता है कि 'सर्वज्ञ भगवान भविष्य को निश्चित रूप से नहीं जानते', परन्तु उसका यह प्रयास सफल नहीं हो पाता, क्योंकि सम्पूर्ण जिनागम सर्वज्ञता की सिद्धि से भरा पड़ा है। इस गद्यांश में लेखक ने ८ आगम प्रमाण प्रस्तुत किये हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि केवली

भगवान प्रत्येक द्रव्य की भूत और भविष्य की पर्यायों को भी वर्तमानवत् स्पष्ट जानते हैं। सर्वज्ञसिद्धि जैन–न्याय–शास्त्र का प्रमुख विषय है, फिर भी जब न्याय के विशेषज्ञ विद्वान भी सर्वज्ञता के सम्बन्ध में आशंकाएँ व्यक्त करते हैं या उसकी नई–नई व्याख्यायें प्रस्तुत करने लगते हैं, तो आश्चर्य होता है। सर्वज्ञ का ज्ञान अनिश्चयात्मक या सशर्त नहीं, अपितु निश्चयात्मक और बिना शर्त होता है।

२. अज्ञानी सोचता है कि यदि भविष्य को निश्चित माना जाएगा, तो वस्तु की स्वतंत्रता खण्डित हो जाएगी। परन्तु यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि हमारी इच्छानुसार वस्तु का परिणमन होना स्वतंत्रता नहीं, अपितु वस्तु का तत्समय की योग्यतानुसार परिणमन करना ही स्वतंत्रता है।

३. यदि भविष्य को निश्चित न माना जाए, तो ज्योतिष–ज्ञान, निमित्तज्ञान आदि भी काल्पनिक सिद्ध होंगे। अतः सर्वज्ञ को भविष्यज्ञ न मानने पर सम्पूर्ण जिनागम के विरोध का प्रसंग आएगा। इसलिए जो लोग उनकी भविष्यज्ञता से इन्कार करते हैं, उनसे अनुरोध है कि वे इस विषय पर पुनर्विचार अवश्य करें। यह बात जिस व्यक्ति के माध्यम से प्रसिद्ध है, उसका विरोध करने के लिए वे जिनागम का विरोध न करें।

४. **विशेष निर्देश :–** पूर्व निर्देशानुसार आगम प्रमाणों की तालिका में ये आगम प्रमाण भी लिखवा दिए जायें। प्रत्येक आगम प्रमाण को यथासम्भव विस्तार से समझाया जाए।

हमारी इच्छानुसार वस्तु का परिणमन स्वतंत्रता नहीं, अपितु परतंत्रता है। वस्तु की योग्यतानुसार परिणमन ही वस्तु की स्वतंत्रता है।

प्रश्न :–

१०. भविष्य को निश्चित मानने में अज्ञानी को क्या आपत्ति है?

११. यदि भविष्य को निश्चित न माना जाए तो क्या हानि है?

****

सर्वज्ञता के विरोध में व्यवहारनय का दुरुपयोग

गद्यांश ६

अत्यन्त स्पष्ट उक्त आगम............................बात ही कहाँ रह जाती है?

(पृष्ठ १० पैरा ३ से पृष्ठ ११ पैरा ३ तक)

विचार बिन्दु :–

१. इस गद्यांश में नियमसार गाथा १५९ और परमात्मप्रकाश अध्याय १ के पाँचवे दोहे के आधार पर सर्वज्ञता का विरोध करने वालों का उल्लेख किया गया है।

उनका कहना है कि केवली भगवान लोकालोक को व्यवहारनय से जानते हैं और समयसार गाथा ११ में व्यवहारनय को अभूतार्थ बताया गया है, अतः केवली के द्वारा लोकालोक को जानना अभूतार्थ हुआ तो सर्वज्ञता भी अभूतार्थ हुई। इसप्रकार सर्वज्ञता अभूतार्थ अर्थात् असत्य सिद्ध होती है।

प्रश्न :–

१२. पूर्वपक्ष द्वारा नियमसार गाथा १५९ क्यों प्रस्तुत की गई है?

****

अज्ञानी द्वारा प्रस्तुत शंका का समाधान

गद्यांश ७

पर उनका यह कथन भी....................................दूषण प्राप्त होगा।

(पृष्ठ ११ पैरा ४ से पृष्ठ १३ पैरा ४ तक)

विचार बिन्दु :–

१. इस गद्यांश में पूर्वपक्ष द्वारा प्रस्तुत तर्क का उत्तर दिया गया है। नियमसार गाथा के १५९ तथा परमात्मप्रकाश अध्याय १ दोहा ५ के आधार यह सिद्ध नहीं होता कि केवली भविष्य को नहीं जानते। परमात्मप्रकाश अध्याय १, गाथा ५२ की टीका में भी स्पष्ट किया गया है कि केवली भगवान पर को तन्मय होकर नहीं जानते, इसलिए व्यवहार कहा गया है, न कि उनके परिज्ञान का ही अभाव होने के कारण। यदि वे पर–पदार्थों को तन्मय होकर जानने लगें तो वे स्वयं–दुखी एवं रागी–द्वेषी हो जायेंगे – यह महान दोष आएगा।

२. स्वाश्रितो निश्चयः पराश्रितो व्यवहारः अर्थात् आत्माश्रित कथन निश्चय है और पराश्रित कथन व्यवहार है। केवली भगवान लोकालोक को जानते हैं, परन्तु उससे तन्मय नहीं होते इसलिए इसे व्यवहार कहा है। वे पर को जानते ही नहीं हैं – ऐसा आशय कदापि नहीं है।

३. प्रवचनसार गाथा १९ की जयसेनाचार्य कृत टीका में केवली के समान ज्ञानी छद्मस्थों का भी पर को जानना व्यवहार से कहा गया है; अतः व्यवहार से जानने का अर्थ नहीं जानना लिया जाए तो ज्ञानियों द्वारा भी पर को जानना असत्य सिद्ध होगा जो कि प्रत्यक्ष विरुद्ध होगा।

४. **विशेष स्पष्टीकरण :–** केवली भगवान व्यवहारनय से लोकालोक को जानते हैं – इस कथन का वास्तविक आशय समझने के लिए नयों के स्वरूप पर विचार करना चाहिए।

केवलज्ञान तो सकल प्रत्यक्ष ज्ञान है, अतः उसमें नय नहीं होते और लोकालोक तो ज्ञेय पदार्थ हैं, अतः उनमें भी नय नहीं होते? फिर केवली भगवान ''व्यवहारनय से जानते हैं'' यह कहना कैसे सम्भव है।

वास्तव में व्यवहारनय केवलज्ञान या लोकालोक में नहीं है, अपितु हमारे श्रुतज्ञान में होता है। इसीप्रकार निश्चयनय भी केवलज्ञान या आत्मा में नहीं अपितु हमारे श्रुतज्ञान में होता है।

जब हम अपने श्रुतज्ञान में केवलज्ञान के स्वरूप का निर्णय इसप्रकार करते हैं कि वह लोकालोक को जानता है, तब लोकालोक के माध्यम से केवलज्ञान का निर्णय होने के कारण यह निर्णय पराश्रित होने से व्यवहारनय हुआ; तथा जब हम केवलज्ञान का निर्णय इसप्रकार करें कि वह अपने आत्मा को जानता है, तब यह निर्णय स्वाश्रित होने के कारण निश्चयनय हुआ। इसप्रकार श्रुतज्ञान में निश्चयनय-व्यवहारनय होते हैं, केवलज्ञान या लोकालोक में नय नहीं होते।

'स्वाश्रित' और 'पराश्रित' का आशय :- निश्चयनय स्वाश्रित और व्यवहारनय पराश्रित कहा गया है। किसी भी व्यक्ति/पदार्थ का उसके स्वरूप से कथन/ज्ञान करना स्वाश्रित है तथा अन्य व्यक्ति/पदार्थ से उस व्यक्ति/पदार्थ का परिचय देना पराश्रित है। अतः स्वाश्रय या पराश्रय, पदार्थ का स्वरूप नहीं है, मात्र उसके निरूपण/ज्ञान का भेद है, इसलिए निश्चय/व्यवहारनय भी वाणी/ज्ञान में होते हैं, पदार्थ में नहीं।

५. यहाँ स्वाश्रित और पराश्रित कथनों के कुछ प्रयोग दिए जा रहे हैं -

(अ) भगवान महावीर को वीतरागी और सर्वज्ञ कहना स्वाश्रित कथन है तथा त्रिशलानंदन आदि कहना पराश्रित कथन है।

(ब) पूज्य गुरुदेव का उनके दृढ़ श्रद्धान, महान व्यक्तित्व आदि से परिचय देना, स्वाश्रित कथन है तथा उन्हें सोनगढ़ के सन्त, समयसार के प्रवक्ता आदि कहना पराश्रित कथन है।

(स) आत्मा को ज्ञानस्वभावी कहना स्वाश्रित कथन है, तथा मनुष्य, देव आदि कहना पराश्रित कथन है।

(द) शरीर को पुद्‌गल/जड़ कहना स्वाश्रित कथन है, तथा पञ्चेन्द्रिय जीव आदि कहना पराश्रित कथन है।

(इ) मोक्षमार्ग को वीतरागभावरूप कहना स्वाश्रित कथन है और शुभभावरूप कहना पराश्रित कथन है।

६. वस्तु के अभेदरूप कथन को स्वाश्रित और गुण-पर्यायों के भेदरूप कथन को पराश्रित (सद्‌भूत-व्यवहार) भी कहा गया है।

इसीप्रकार केवली भगवान परद्रव्यों में तन्मय नहीं होते, फिर भी उनको ज्ञान और लोकालोक में साथ ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है - ऐसा कहना ही व्यवहारनय है, क्योंकि दो द्रव्यों में किसी भी प्रकार से सम्बन्ध स्थापित करना व्यवहार है।

वस्तुतः ज्ञान को परद्रव्यों से अतन्मय अर्थात् भिन्न जानना निश्चयनय है, और उसका परद्रव्यों से ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध स्थापित करना अर्थात् केवलज्ञान लोकालोक को जानता है - ऐसा जानना/कहना-असद्‌भूत व्यवहारनय है।

श्रद्धा की अपेक्षा तन्मयता :- यहाँ श्रद्धान की अपेक्षा तन्मयता वाला अर्थ घाटित होता है। ज्ञान परद्रव्यों में 'यह मैं हूँ' - ऐसी श्रद्धा पूर्वक जाने, तो वह उनसे तन्मय है, और अपने को उनसे भिन्न जाने तो अतन्मय है।

यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि ज्ञान के ज्ञेयों के साथ जाननेरूप सम्बन्ध को व्यवहार कहा जा रहा है, केवलज्ञान पर्याय में प्रति समय अनन्त ज्ञेयों को दर्पणवत् प्रकाशित करने की सामर्थ्य को अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव को व्यवहार नहीं कहा है। इसलिए केवली द्वारा लोकालोक को जानना व्यवहारनय से कहा जाने पर भी उनकी सर्वज्ञता पर अर्थात् क्रमबद्धपर्याय व्यवस्था पर कोई आँच नहीं आती।

प्रश्न :-

१३. *केवली भगवान व्यवहारनय से लोकालोक को जानते हैं - इस कथन का क्या आशय है?*

१४. *केवली भगवान व्यवहारनय से लोकालोक को जानते हैं - इस कथन में व्यवहारनय कहाँ और कैसे घटित होता है?*

जिनागम के अन्य प्रमाणों से क्रमबद्धपर्याय का पोषण

गद्यांश ८

तार्किक चूड़ामणि....................................से निश्चित नहीं होते।

(पृष्ठ १३ पैरा ५ से पृष्ठ १४ पैरा ४ तक)

विचार बिन्दु :– आचार्य समन्तभद्र ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में केवलज्ञान दर्पण में लोकालोक प्रतिबिम्बित होने का उल्लेख करते हुए वर्धमान भगवान को नमस्कार किया है।

इसप्रकार अनेक आगम प्रमाणों से सर्वज्ञता और त्रिकालज्ञता सहजसिद्ध होने पर भी लोग पूछते हैं कि क्रमबद्धपर्याय की बात कौन से शास्त्र में लिखी है? वास्तव में देखा जाए तो सम्पूर्ण जिनागम में सर्वज्ञता और क्रमबद्धपर्याय के स्वर गूंजते हैं।

समाज में प्रचलित पूजन-पाठों में क्रमबद्धपर्याय की बात सर्वत्र सुनाई देती है। इस संदर्भ में लेखक ने चन्द्रप्रभ पूजन की जयमाला का उल्लेख किया है। इसीप्रकार आचार्य समन्तभद्र कृत ''स्वयंभू स्तोत्र'' तथा अन्य अनेक पूजनों में भी सर्वज्ञता और क्रमबद्धपर्याय की बात आती है।

प्रश्न :–

१५. *रत्नकरण्ड श्रावकाचार और चन्द्रप्रभ पूजन के आधार से क्रमबद्धपर्याय का समर्थन कीजिए?*

****

प्रथमानुयोग से क्रमबद्धपर्याय का समर्थन

गद्यांश ९

प्रथमानुयोग के सभी शास्त्र............................की घोषणायें की गई थीं।

(पृष्ठ १४ पैरा ५ से पृष्ठ १६ पंक्ति १ तक)

विचार बिन्दु :– इस गद्यांश में लेखक ने प्रथमानुयोग में प्रसिद्ध चार घटनाओं का उल्लेख करके भविष्य की घटनाओं का निश्चित होना सिद्ध

किया है। वे घटनाएँ निम्नानुसार हैं।

(अ) भगवान नेमिनाथ ने १२ वर्ष पूर्व द्वारका जलने की घोषणा कर दी थी।

(ब) भगवान आदिनाथ ने मारीचि के २४वें तीर्थंकर होने की घोषणा एक कोड़ा-कोड़ी सागर पहले कर दी थी।

(स) आचार्य भद्रबाहु द्वारा निमित्त-ज्ञान के आधार पर उत्तर भारत में बारह वर्ष के अकाल की घोषणा कर दी गई थी, जो पूर्णतः सत्य सिद्ध हुई।

(द) सम्राट चन्द्रगुप्त के स्वप्नों के आधार पर की गई भविष्य की घोषणाएँ आज भी सिद्ध हो रही हैं।

अज्ञानियों को ऐसा लगा कि भगवान द्वारका जला देंगे, परन्तु वे तो वीतरागी और सर्वज्ञ थे। उन्होंने तो जैसा जाना था वैसा कह दिया था। भगवान द्वारा द्वारका जलाए जाने की बात तो दूर रही, द्वीपायन मुनि व अन्य लोगों ने भी उसे बचाने के बहुत प्रयत्न किये, परन्तु उससमय वे ही उसके जलने में निमित्त बने। द्वारका तो स्वयं अपनी उपादानगत योग्यता से अपने स्वकाल में जली।

मारीचि को भी २४वाँ तीर्थंकर होना बताया गया था। अतः सहज ही उसके परिणाम ऐसे हुए की एक-कोड़ी सागर तक अनेकों भव धारण किए। मारीचि का स्वतंत्र परिणमन भी आदिनाथ द्वारा की गई घोषणा के अनुरूप ही था।

प्रश्न :–

१६. *भगवान नेमिनाथ द्वारा द्वारिका जलने की घोषणा सुनकर किन लोगों पर क्या प्रतिक्रिया हुई?*

१७. *प्रथमानुयोग की किन घटनाओं से 'क्रमबद्धपर्याय' का पोषण होता है?*

****

करणानुयोग से क्रमबद्धपर्याय का समर्थन

गद्यांश १०

तथा क्या करणानुयोग में.....................................पर ऐसा नहीं होता है।

(पृष्ठ १६ पैरा २ से पृष्ठ १७ पैरा ४ तक)

विचार बिन्दु :– इस गद्यांश में करणानुयोग में वर्णित वस्तु व्यवस्था के कुछ नियमों के आधार पर सिद्ध किया गया है कि प्रत्येक जीव के समस्त भव और उनका क्रम निश्चित है। वे नियम निम्नानुसार है :–

१. छः महीने आठ समय में छः सौ आठ जीवों का निगोद से निकलना और इतने ही जीवों का मोक्ष जाना निश्चित है। इस संख्या में कभी परिवर्तन नहीं होता है।

२. चारों गतियों के जीवों की संख्या निश्चित है, इसमें भी कोई परिवर्तन नहीं होता।

३. प्रत्येक जीव नित्यनिगोद से अधिकतम दो हजार सागर के लिए निकलता है तथा दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय आदि के निश्चित भव धारण करता है। जैसे – मनुष्य के ४८ भव मिलते हैं।

उक्त नियमों से यह निष्कर्ष निकलता है कि चारों गतियों के जीवों की संख्या, प्रत्येक जीव के भाव तथा पुण्य-पाप आदि भाव और तदनुसार कर्मों का बन्ध-उदय आदि सम्पूर्ण व्यवस्था सुनिश्चित है।

प्रश्न :–

१८. *करणानुयोग में प्रतिपादित किन नियमों के आधार पर सुनिश्चित क्रमबद्ध परिणमन की व्यवस्था सिद्ध होती है।*

****

पुण्य-पाप भाव भी हमारी इच्छानुसार नहीं होते

गद्यांश ११

इस पर लोगों को लगता है कि.....................................किया गया है।

(पृष्ठ १७ पैरा ५ से पृष्ठ २० पैरा ३ तक)

विचार बिन्दु :–

१. जब यह कहा जाता है कि प्रत्येक जीव के परिणाम, कर्मबन्ध, उदय तथा भव आदि सब निश्चित हैं, हम उसमें परिवर्तन नहीं कर सकते तो अनेक लोगों को यह आपत्ति होना स्वाभाविक है कि हमारे हाथ में तो कुछ नहीं रहा, हम तो एकदम बंध गए। पुरुषार्थ की व्यर्थता या निष्फलता सम्बन्धी अनेक प्रश्न भी उत्पन्न होते हैं, जिनकी चर्चा आगे यथास्थान की आएगी।

वास्तव में शुभाशुभ भाव क्रमशः अपने आप बदलते रहते हैं। कोई भी परिणाम धारावाही रूप से अन्तमुहूर्त तक ही रहता है, इससे अधिक नहीं। जीव की इच्छा या प्रयत्न से कुछ भी परिवर्तन नहीं होता।

निगोद से निकलकर जीव अपनी योग्यतानुसार पुण्य भाव करके मनुष्य गति प्राप्त करता है। इस सन्दर्भ में भरत चक्रवर्ती के पुत्रों की चर्चा प्रसिद्ध है, जो निगोद से निकलकर चक्रवर्ती के पुत्र होकर मोक्ष गए।

ढाई-द्वीप के सभी तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, इन्द्र आदि के भव भी केवली भगवान के ज्ञान में निश्चित हैं, तथा यथासमय उस क्षेत्र के केवली आदि की वाणी में भी यह सब जानकारी आती है।

इससे यह सिद्ध होता है कि हम अपनी इच्छानुसार पुण्य करके तीर्थंकर इन्द्र, चक्रवर्ती या देव आदि हो जायें यह सम्भव नहीं है। नरक जाने योग्य भाव भी हम अपनी इच्छानुसार न तो कर सकते हैं और न होनेवाले भावों को रोक सकते हैं। हमारी तत्समय की योग्यतानुसार जो भाव होने हैं, वे भाव ही हम उस समय करेंगे और तदनुसार वैसी गति में जायेंगे।

यदि हमारे भविष्य में तीर्थंकर आदि पर्यायों का क्रम होगा तो हम सहज ही वैसे भाव करेंगे, अन्यथा वैसे भाव करना चाहें तो भी न कर सकेंगे।

प्रश्न :– हमारे पुण्य-पाप भाव हमारी इच्छा के आधीन नहीं हैं, तो यदि हमें सप्त-व्यसन आदि के भाव आते हैं तो आने दें! उन्हें रोकने का प्रयत्न क्यों

करें? तत्व-निर्णय और सम्यग्दर्शन आदि की पर्यायें भी हमारे आधीन नहीं हैं, तो हम इनके लिए प्रयत्न क्यों करें? इस स्थिति में तो हम स्वच्छन्द हो जायेंगे?

उत्तर :- भाई! जरा गहराई से सोचो! यदि तुम अपने पाप-भावों को रोक सकते हो तो क्यों नहीं रोक लेते? और सम्यग्दर्शनादि प्रगट क्यों नहीं कर लेते? इससे सिद्ध होता है कि परिणाम हमारी इच्छा के आधीन नहीं है।

जिसे परिणामों की स्वतंत्रता की श्रद्धा होती है उसकी दृष्टि ज्ञायक स्वभाव पर होने से उसे अमर्यादित पापभाव आते ही नहीं हैं और सम्यग्दर्शनादि निर्मल परिणाम होने लगते हैं। अतः परिणामों की स्वतंत्रता स्वीकार करना ही निर्मल पर्याय प्रगट करने का उपाय है।

प्रश्न :- परिणामों की स्वतंत्रता का निर्णय करना हमारी इच्छा के आधीन है या नहीं?

उत्तर :- यह ऐसा विचित्र प्रश्न है कि यदि इसका उत्तर हाँ में दिया जाए, तो उसका अर्थ ना होगा, और यदि ना में दिया जाए, तो उसका अर्थ हाँ होगा।

यदि कोई माँ अपने छोटे बालक को थपकी देकर सुलाए और फिर उससे पूछे पप्पू! सो गए क्या? तो यदि बालक सो गया हो, तो कुछ नहीं बोलेगा, और यदि वह हाँ कहे तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह अभी सोया नहीं।

इसीप्रकार यदि हम यह कहें कि हाँ! क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करना तो हमारे आधीन है, तो इसका अर्थ यह हुआ अभी हमें परिणामों की स्वतंत्रता और अकर्त्तास्वभाव का यथार्थ निर्णय नहीं हुआ है। यदि निर्णय हो गया हो तो इस प्रश्न का उत्तर अनुभूतिस्वरूप मौन ही होगा, वाणी नहीं।

यदि कोई वक्ता सभा में पीछे बैठे श्रोताओं से पूछे कि आवाज आ रही है या नहीं? और वे कहें कि नहीं आ रही हैं; तो इसका अर्थ हुआ कि आवाज आ रही है, अन्यथा वे उत्तर कैसे देते?

इसीप्रकार यदि हम कहें कि क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करना भी हमारी इच्छा के आधीन नहीं है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि हमें उसका निर्णय हो गया है, अन्यथा हम नहीं कहकर पर्यायों की स्वतंत्रता का स्वीकार कैसे करते?

२. इस व्यवस्था में पराधीनता नहीं, अपितु एक-एक समय की पर्याय की स्वतंत्रता सिद्ध होती है।

३. **विशेष स्पष्टीकरण :-** जगत यह समझता है कि "जैसा हम चाहें वैसा करें" अर्थात् उसकी इच्छानुसार वस्तु का परिणमन हो तो उसे स्वाधीनता नजर आती है; परन्तु वह नहीं सोचता कि इस व्यवस्था में वस्तु का परिणमन इच्छा के आधीन हो गया, अतः वस्तु की स्वाधीनता खण्डित हो गई।

यह पहले भी कहा जा चुका है कि इच्छानुसार कार्य होना वस्तु की स्वतन्त्रता नहीं है, अपितु वस्तु की तत्समय की योग्यतानुसार कार्य होना ही वस्तु की स्वतन्त्रता है। वस्तु का परिणमन व्यवस्थित क्रम में पूर्ण निश्चित होने पर भी स्वतंत्र है। अज्ञानी की इच्छा या सर्वज्ञ के ज्ञान के आधीन नहीं हैं। क्योंकि प्रत्येक वस्तु का परिणमन उसकी तत्समय की योग्यतानुसार होता है। अतः हमारे पुण्य-पाप भाव, स्वयं-नरक आदि गतियाँ सब अपनी योग्यतानुसार स्वकाल में स्वयं होते हैं।

इसप्रकार क्रमबद्ध परिणमन की व्यवस्था में वस्तु की स्वतन्त्रता खण्डित नहीं होती अपितु सुरक्षित रहती है।

यदि जिनवाणी को ही न माना जाए तो २४ तीर्थंकर, ५ परमेष्ठी, स्वर्ग-नरक, मोक्ष आदि भी कुछ भी मानना सम्भव न होगा।

प्रश्न :-

१९. *यह जीव अपनी इच्छानुसार शुभभाव करके तीर्थंकर, चक्रवर्ती इन्द्र आदि हो सकता है या नहीं? कारण सहित स्पष्ट कीजिए?*

२०. *वस्तु का परिणमन स्वतन्त्र है - इस कथन का क्या आशय है?*

****

त्रिलक्षण परिणाम पद्धति

गद्यांश १२

इसीप्रकार चरणानुयोग...ध्रौव्यात्मक है।

(पृष्ठ २० पैरा ४ से पृष्ठ २२ पैरा १ तक)

विचार बिन्दु : –

१. समयसार गाथा ३०८–३११ की टीका एवं कार्तिकेयानुप्रेक्षा की गाथा ३२१–३२३ के आधार पर क्रमबद्ध परिणमन व्यवस्था पहले ही सिद्ध की जा चुकी है। प्रवचनसार गाथा १०२ में प्रत्येक पर्याय के जन्मक्षण और नाशक्षण की बात भी कही गई है। प्रवचनसार गाथा ९९ की टीका के माध्यम से द्रव्य के विस्तारक्रम का उदाहरण देकर प्रवाहक्रम को समझाया गया है।

विस्तारक्रम में प्रवर्तमान द्रव्य के सूक्ष्म अंश को प्रदेश कहते हैं तथा प्रवाह क्रम में प्रवर्तमान द्रव्य को परिणाम कहते हैं।

द्रव्य के प्रदेश अथवा परिणाम परस्पर भिन्न होते हैं, इसलिए उनमें क्रम होता है। द्रव्य के सभी प्रदेश एक साथ फैले होते हैं, किन्तु जहाँ एक प्रदेश है वहीं दूसरा प्रदेश नहीं है, तथा जहाँ दूसरा प्रदेश है वहीं पूर्व का या अगला प्रदेश नहीं है। इसलिए प्रदेशों में विस्तारक्रम होता है।

इसीप्रकार द्रव्य के परिणाम प्रवाहक्रम अर्थात् एक के बाद एक अपने क्रम में प्रगट होते हैं। जिस काल में जो परिणाम है, उस काल में दूसरा नहीं है, तथा जिस काल में दूसरा परिणाम है उसमें पूर्व का या अगला परिणाम नहीं है। इसलिए परिणामों में प्रवाहक्रम होता है।

२. प्रत्येक प्रदेश और परिणाम उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यस्वरूप है, इसे त्रिलक्षण परिणाम पद्धति कहते हैं।

प्रत्येक प्रदेश या परिणाम अपने स्वरूप की अपेक्षा उत्पादरूप है पूर्वरूप की अपेक्षा व्ययरूप है तथा परस्पर अनुस्यूति से रचित एक वास्तुपने से प्रवाहक्रम में

अनुत्पन्न और अविनष्ट होने से ध्रौव्यरूप है।

उपर्युक्त त्रिलक्षण परिणाम पद्धति में प्रवर्तमान द्रव्य, स्वभाव का अतिक्रम नहीं करता, अतः द्रव्य भी त्रिलक्षण अर्थात् उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप है।

आचार्य ने झूलते हुए मोतियों के हार के उदाहरण से त्रिलक्षण परिणाम पद्धति को समझाया है।

निर्देश :– उक्त टीका और भावार्थ के आधार पर निम्न बातों का विशेषरूप से स्पष्ट करना चाहिए –

(अ) प्रदेश (ब) परिणाम (स) विस्तारक्रम

(द) परस्पर अनुस्यूति (इ) त्रिलक्षण परिणाम पद्धति

विशेष स्पष्टीकरण :– कपड़े के थान में उसकी चौड़ाई (अर्ज) विस्तार जैसा है, तथा उसकी लम्बाई प्रवाह जैसी है, इसे ताना बाना भी कहते हैं। यहाँ तानाबाना क्रमशः परिणाम और प्रदेश हैं। इस उदाहरण से उक्त सभी बिन्दु स्पष्ट किये जा सकते हैं।

किसी हॉल की लम्बाई–चौड़ाई को विस्तार क्रम का उदाहरण बनाकर उसके विस्तार क्रम को समझाते हुए उसमें उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य घटित करना चाहिए। जैसे ५० फुट लम्बे हॉल में उसकी लम्बाई नापते समय १० वां फुट आया अर्थात् १०वें रूप से उत्पन्न हुआ, अतः वह उत्पादरूप है १०वें का उत्पाद ही ९वें का व्यय है, अतः वह ९वें फुट के अभाव अर्थात् व्ययरूप है और सम्पूर्ण अखण्ड हॉल की अपेक्षा वह १० वां फुट अपने स्थान पर सदैव रहता है अर्थात् न तो उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है, अतः वही ध्रौव्यरूप है।

रेलयात्रा करते समय किसी परिचित स्टेशन में भी ये तीनों घटित किए जा सकते हैं। जैसे बड़ौदा का आना उत्पादरूप है, वह सूरत के जानेरूप होने से व्ययरूप है। बड़ौदा का आना ही सूरत के जानेरूप है, तथा बड़ौदा अपने स्थान पर सदा स्थिर होने से न आनेरूप है न जानेरूप है अतः ध्रौव्यरूप हैं।

इसीप्रकार सम्यक्त्व पर्याय में भी त्रिलक्षण परिणाम पद्धति घटित करें। वह पर्याय अपने स्वरूप से उत्पन्न हुई, अतः उत्पादरूप है। सम्यक्त्व का उत्पाद ही मिथ्यात्व का व्यय है, अतः मिथ्यात्व की अपेक्षा सम्यक्त्व पर्याय व्ययरूप हैं तथा त्रिकालवर्ती परिणामों के अखण्ड प्रवाहक्रम में प्रत्येक पर्याय अपने स्वकाल में सदा विद्यमान है, अतः वह ध्रुवरूप है।

इसीप्रकार अन्य अनेक उदाहरणों से उपर्युक्त बिन्दुओं को समझाया जा सकता है।

परस्पर अनुस्यूति :– दो भिन्न अंगों में एकता का आधार ही अनुस्यूति है। यद्यपि प्रत्येक प्रदेश और प्रत्येक परिणाम परस्पर भिन्न-भिन्न हैं, तथापि उनमें कथञ्चित् भिन्नता है, सर्वथा भिन्नता नहीं। जिस द्रव्य के वे प्रदेश और परिणाम हैं, वह द्रव्य उनमें सदा विद्यमान हैं, अतः वे प्रदेश और परिणाम मानों उस द्रव्य के कारण परस्पर अनुस्यूतिरूप हैं अर्थात् बंधे हैं। हार में सभी मोती धागे में गुंथे हैं, अर्थात् उनमें परस्पर अनुस्यूति है। भारत के सभी प्रान्त, जिले और गाँव परस्पर भिन्न हैं; फिर भी प्रत्येक प्रान्त, जिले और गांव में एक अखंड भारत विद्यमान है, अर्थात् उन प्रान्त जिलों और गांवों में परस्पर अनुस्यूति से रचित एक वास्तुपना है, अतः भारत एक अखंड राष्ट्र है।

द्रव्य, स्वभाव से ही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणामों की परम्परा में रहता है, इसलिए, द्रव्य स्वयं भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है।

प्रश्न :–

२१. *प्रदेश किसे कहते हैं?*

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का सन्तुलन ही व्यवस्थितपना है, तथा इनका असन्तुलन अव्यवस्थितपना है।

२२. *परिणाम किसे कहते हैं?*	अखंड है।
२३. *प्रदेशों और परिणामों में क्रम क्यों हैं?* २४. *त्रिलक्षण परिणाम पद्धति क्या है?* **** ***क्षेत्र और काल का नियमित क्रम*** **गद्यांश १३** *उक्त प्रकरण में सर्क...................................वह तदनुसार ही होती है।* *(पृष्ठ २२ पैरा २ से पृष्ठ २४ पैरा २ तक)* जिसप्रकार क्षेत्र में प्रत्येक प्रदेश का क्रम नियमित अर्थात् सुनिश्चित है, उसीप्रकार काल अर्थात् पर्याय के प्रगट होने का काल भी नियमित अर्थात् सुनिश्चित है। क्षेत्र और काल के नियमित क्रम को आगामी पृष्ठ पर दी गई तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है। **क्षेत्र का नियमित विस्तार क्रम** १. द्रव्य के सम्पूर्ण प्रदेशों को एक साथ विस्तार की अपेक्षा से देखा जाए तो उसका सम्पूर्ण क्षेत्र एक अर्थात्	२. द्रव्य के विस्तारक्रम का अंश प्रदेश है। ३. क्षेत्र में प्रदेशों का एक नियमित विस्तार क्रम है। ४. मोतियों के हार में जो मोती जिस स्थान क्रम में हैं, उसी नम्बर पर सदा रहेगा, उसमें परिवर्तन सम्भव नहीं है (अन्यथा हार टूट जाएगा।) ५. मुम्बई, दिल्ली, कलकत्ता आदि क्षेत्रांशों के ही नाम हैं। जिसप्रकार मुम्बई के क्षेत्र को वहाँ से उठाकर दिल्ली वाले क्षेत्र में नहीं रखा जा सकता, उसीप्रकार एक ही प्रदेश को अपने स्थान से खिसकाकर आगे पीछे नहीं किया जा सकता। ६. लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतने ही प्रत्येक जीव के प्रदेश हैं। ७. लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु खचित है। **काल का नियमित प्रवाह क्रम** १. द्रव्य के त्रिकालवर्ती परिणामों को एक प्रवाह की अपेक्षा एक साथ देखा जाए

तो उसका प्रवाह त्रैकालिक, एक अर्थात् अखंड है।

२. द्रव्य के प्रवाहक्रम का अंश परिणाम हैं।

३. काल में पर्यायों का एक नियमित प्रवाहक्रम है।

४. झूलते हुए हार में मोतियों के प्रगट होने का काल नियमित है। (झूलते हुए हार से आशय दोनों उंगलियों के बीच पकड़कर एक-एक मोती क्रम से खिसकाने से है। जाप करने में यही प्रक्रिया अपनाई जाती है।)

५. जनवरी, फरवरी आदि माह तथा रविवार, सोमवार आदि दिन, कालांशों के ही नाम हैं। जिसप्रकार जनवरी वाले कालांश को फरवरी में तथा रविवार के कालांश को सोमवार में नहीं रखा जा सकता, उसीप्रकार किसी भी द्रव्य के एक समयवर्ती कालांश (पर्याय) को उससे पहले या बाद में नहीं किया जा सकता।

६. तीन काल के जितमे समय हैं, उतनी ही प्रत्येक द्रव्य की पर्यायें हैं।

७. तीनों काल के एक-एक समय में प्रत्येक द्रव्य की एक-एक पर्याय खचित है।

सीढ़ियों के क्रम तथा सिनेमा की रील की लम्बाई के उदाहरण से भी क्षेत्र और काल का नियमित प्रवाहक्रम समझाया गया है।

आजकल अनेक स्थानों पर स्वचलित सीढ़ियाँ लगी रहती हैं। वे सीढ़ियाँ भी अपने-अपने नियमित क्रम में प्रगट होती हैं। इसीप्रकार पर्यायें भी अपने-अपने नियमित क्रम में प्रगट होती हैं।

प्रत्येक पर्याय स्वसमय से रचित है तो उसे आगे-पीछे कैसे किया जा सकता है? अतः प्रत्येक परिणाम अपने-अपने अवसर में ही प्रगट होता है।

उक्त सम्पूर्ण विश्लेषण से यही निष्कर्ष निकलता है कि जिस द्रव्य की, जो पर्याय, जिस समय, जिस कारण से होनी है, उस द्रव्य की, वही पर्याय, उसी समय, उसी कारण (निमित्त) से होगी।

विशेष स्पष्टीकरण :- जिसप्रकार मुम्बई, दिल्ली, कलकत्ता आदि नामवाले क्षेत्रों को उनके सुनिश्चित स्थान से इधर-उधर नहीं किया जा सकता, उसीप्रकार आकाश के या किसी भी, बहुप्रदेशी द्रव्य के प्रदेशों को उनके स्थान से इधर-उधर नहीं किया जा सकता, यह व्यवस्था ही द्रव्य का नियमित विस्तारक्रम

है। परमाणु और कालाणु एक प्रदेशी हैं, अतः उनमें विस्तारक्रम होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

इसीतरह जिसप्रकार जनवरी, फरवरी या रविवार, सोमवार आदि नाम वाले कालांशों को आगे-पीछे नहीं किया जा सकता; उसीप्रकार प्रत्येक द्रव्य के किसी भी कालांश अर्थात् पर्याय को उसके स्वकाल से आगे-पीछे नहीं किया जा सकता। यह व्यवस्था ही द्रव्य का नियमित प्रवाहक्रम अर्थात् क्रमबद्धपर्याय है।

क्षेत्र के सुनिश्चित क्रम में परिवर्तन नहीं किया जा सकता, यह बात हम प्रत्यक्ष देखते ही हैं। यद्यपि क्षेत्र अमूर्तिक हैं, तथापि १०० फुट लम्बा ५० फुट चौड़ा हॉल, बड़ा मकान, छोटा मकान, गाँव, जिला, महानगर आदि के व्यवहार का प्रयोग भी हम करते हैं, और हमें उनमें परिवर्तन का विकल्प भी नहीं होता।

क्षेत्र हमें दिखाई पड़ता है। थोड़ी बहुत भूतकालीन पर्यायें हमारे स्मृतिज्ञान का विषय बनती हैं, परन्तु भविष्य की पर्यायों के बारे में हम कुछ नहीं जानते। यद्यपि रविवार के बाद सोमवार आदि प्राकृतिक नियमों को तथा स्वप्नज्ञान या ज्योतिषज्ञान के आधार पर कुछ लोग भविष्य के बारे में अनुमान अवश्य करते हैं, परन्तु सुख-दुख, संयोग-वियोग आदि के बारे में जैसा केवली जानते हैं, वैसा हम नहीं जानते हैं, वैसा हम नहीं जानते, इसलिए अपनी इच्छानुसार परिणमन करने की मिथ्या मान्यता से ग्रस्त रहकर दुखी हो रहे हैं।

पर्यायों के निश्चित क्रम को अपने अज्ञान के कारण भले हम न जानते हों, परन्तु इससे वस्तु की व्यवस्था पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। पर्यायों का क्रम तो निश्चित है ही, जिसे सर्वज्ञ द्वारा प्रत्यक्ष जाना जाता है।

यही कारण है कि यहाँ सर्वज्ञ के ज्ञान के आधार से तथा क्षेत्र के नियमित विस्तार क्रम से काल की नियमितता समझाई जा रही है।

प्रश्न :-

२५. *विस्तारक्रम और प्रवाहक्रम को उदाहरण सहित समझाइये?*

२६. *काल की नियमितता समझने के लिए क्षेत्र की नियमितता को आधार क्यों*

बताया गया है?

****

भवितव्यता के आधार से कर्तृत्व का निषेध

गद्यांश १४

प्रसिद्ध तार्किक आचार्य...................................भी नहीं टाल सकते हैं।

(पृष्ठ २४ पैरा ३ से पृष्ठ २६ पैरा ६ तक)

विचार बिन्दु :–

१. इस गद्यांश में स्वयंभू स्तोत्र, पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका, अध्यात्म रहस्य, मोक्षमार्ग प्रकाशक, और कषायपाहुड के आधार से भवितव्यता का उल्लेख करते हुए कर्तृत्व के अहंकार को छोड़ने की प्रेरणा दी गई है।

२. पण्डित जुगलकिशोरजी मुख्तार ने सर्वज्ञता और भवितव्यता में ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध स्थापित करते हुए भी दोनों की स्वतंत्रता का निरूपण किया है।

३. आचार्यकल्प पण्डित प्रवर टोडरमलजी के कथनानुसार "इच्छानुसार कार्य होना भवितव्य के आधीन है, इच्छा के आधीन नहीं।"

४. कषायपाहुड व धवलाटीका में सौधर्म इन्द्र को भी काललब्धि के अभाव में गणधर को उपस्थित करने में असहाय बताया गया है।

विशेष स्पष्टीकरण :– आचार्य समन्तभद्र ने स्वयंभू स्तोत्र में भवितव्यता का स्वरूप बताते हुए उसे "हेतुद्वय से उत्पन्न होनेवाला कार्य जिसका लिङ्ग है" इस विशेषण से सम्बोधित करते हुए उसकी शक्ति को अलंघ्य कहा है, अतः उनका स्वरूप कुछ उदाहरण देते हुए संक्षेप में स्पष्ट कर देना चाहिए।

नोट :– यहाँ उपादान और निमित्त को हेतुद्वय कहा है, अतः उनका स्वरूप कुछ उदाहरण देकर स्पष्ट कर देना चाहिए।

उक्त कारिका में निम्न बिन्दु विशेषरूप से समझने योग्य हैं :-

१. अलंघ्य शक्तिर्भवितव्यतेयम् :– भवितव्यता अर्थात् होने योग्य कार्य या होनहार, उसकी शक्ति अलंघ्य है अर्थात् जो कार्य होना है, उसे कोई टाल नहीं सकता। टी.वी. पर दिखाए जानेवाले प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक

महाभारत में किसी पात्र को विदुर से यह कहते हुए दिखाया गया है – 'होनी को अनहोनी तो नहीं किया जा सकता विदुरजी!' तथाकथित धार्मिक कार्यक्रमों में भी अनेक बार यह बताया जाता है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सृष्टि नियंता शक्तियाँ भी विधि के विधान के अनुसार कार्य करने को विवश हैं।

२. हेतु द्वयाविष्कृत :– यद्यपि प्रत्येक कार्य अपनी उपादानरूप शक्ति से तत्समय की योग्यतानुसार स्वयं उत्पन्न होता है, तथापि उससमय अनुकूल बाह्य पदार्थ अवश्य उपस्थित होते हैं, जिन्हें निमित्त कहा जाता है।

इसप्रकार प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति में निश्चय हेतु उपादान है, तथा व्यवहार हेतु निमित्त है। वहाँ उपादान और निमित्त अर्थात् कार्योत्पत्ति के निश्चय और व्यवहार कारणों की सन्धि स्थापित करते हुए प्रत्येक कार्य को हेतुद्वय अर्थात् दो प्रकार के हेतुओं से उत्पन्न होने वाला कहा गया है।

३. कार्यलिंङ्गा :– यह एक सामासिक शब्द है – इसका आशय है कि कार्य है लिङ्ग अर्थात् चिन्ह जिसका। यह भवितव्यता का विशेषण है इसलिए लिङ्ग शब्द को स्त्रीलिङ्ग में लिङ्ग रखा गया है।

४. लिङ्ग शब्द से आशय :– प्रत्येक कार्य हेतुद्वय से उत्पन्न होता है, और वह कार्य भवितव्यता का लिङ्ग अर्थात् ज्ञापक हेतु है। यहाँ कार्य को भवितव्यता का ज्ञापक या हेतु कहा गया है – इसमें बहुत गम्भीर रहस्य है।

'हेतु' शब्द उत्पत्ति के कारणों के अर्थ में भी होता है, परन्तु न्यायशास्त्र में 'हेतु' शब्द का प्रयोग ज्ञापक अर्थात् ज्ञान करानेवाले अर्थ में भी होता है। 'हेतुद्वय से उत्पन्न होनेवाला कार्य इस वाक्यांश में हेतु शब्द उपादान और निमित्त कारणों के अर्थ में है और कार्यलिङ्गा में लिङ्ग शब्द ज्ञापक हेतु के अर्थ में है।

अनुमान-प्रमाण के प्रकरण में हेतु को साध्य की सिद्धि करने वाला अर्थात् ज्ञान कराने वाला कहा गया है। जैन न्याय में ज्ञापक हेतु के २२ भेद बताए गए हैं। जब हम धुँआ देखकर अग्नि का ज्ञान करते हैं, तब अग्नि को साध्य और धुएँ को उसका साधन, हेतु या लिङ्ग कहा जाता है।

५. कार्य को भवितव्यता का ज्ञापक हेतु क्यों कहा गया है :– जब

कोई भी कार्य होता है, तब यह प्रश्न सहज उत्पन्न होता है कि यह कार्य क्यों हुआ? अज्ञानीजन निमित्तों को या ईश्वर आदि अदृश्य शक्तियों को या स्वयं को कार्य का कर्त्ता मानकर दुःखी होते हैं। जैनशासन में प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति में पाँच समवायों को कारण माना गया है। यहाँ भवितव्यता की मुख्यता से उसे भी कार्य की उत्पत्ति का कारण कहा गया है। किसी कार्य की भवितव्यता अर्थात वह होना है या नहीं – यह सर्वज्ञ जानते हैं, हम नहीं, अतः विवक्षित कार्य की ही भवितव्यता थी अर्थात् यही होना था – ऐसा कहा जाएगा। तब यह प्रश्न सहज उपस्थित होता है कि यह आपने कैसे जाना कि यही होना था? तब यह कहा जाएगा कि जो यह कार्य हुआ है यही इसका प्रमाण है कि यही होना था, अर्थात् कार्य का होना ही उसकी होनहार या भवितव्यता को सिद्ध कर रहा है। अनुमान की दृष्टि से यहाँ कार्य धुएँ के स्थान पर है और भवितव्यता अग्नि के स्थान पर है।

उक्त स्पष्टीकरण को निम्न घटना पर घटित करके अच्छी तरह समझा जा सकता है।

२६ जनवरी, २००१ को गुजरात में भूकम्प आया था। यदि यह पूछा जाए कि भूकम्प क्यों आया? तो भवितव्यता की अपेक्षा यह कहा जाएगा कि वह तो आना ही था, इसलिए आया? पुनः प्रश्न होगा कि आप तो सर्वज्ञ नहीं हैं, फिर आप कैसे कह सकते हैं कि भूकम्प आना ही था? इसी प्रश्न का उत्तर आचार्य समन्तभद्र कार्यलिङ्ग कहकर दे रहे हैं कि भूकम्प होना स्वयं कह रहा है, कि उसे आना ही था। होनहार का भूकम्प के होने से बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है।

इसप्रकार भूकम्प रूपी धुआँ, उसकी भवितव्यता रूपी अग्नि का ज्ञापक हेतु अर्थात् लिङ्ग है। **होनी (कार्य) ही होनहार (भवितव्यता) का ज्ञापक है।**

यह ध्यान देने की बात है कि भवितव्यता, कार्य का उत्पादक कारण है, जबकि कार्य भवितव्यता का ज्ञापक कारण अर्थात् हेतु है। धुएँ से अग्नि उत्पन्न

नहीं होती, परन्तु उसका ज्ञान होता है; जबकि अग्नि जलाने पर ही धुँआ उत्पन्न हो सकता है, अग्नि के बिना नहीं।

'यह निरीह संसारी प्राणी भवितव्यता के बिना अनेक सहकारी कारणों को मिलाकर भी कार्य सम्पन्न करने में समर्थ नहीं होता।' इस कथन में सहकारी कारणों से आशय बाह्य निमित्तों से है। वस्तुतः अज्ञानी जीव बाह्य निमित्त मिलाने का विकल्प करता है और यदि योग्यतानुसार उन निमित्तों का संयोग हो जाए तो उपचार से ऐसा कहा जाता है कि जीव ने निमित्त मिलाए। यदि विवक्षित कार्य सम्पन्न हो जाए तो उन निमित्तों को उपचार से सहकारी कारण कहा जाता है और यदि विवक्षित कार्य न हो तो उन निमित्तों को सहकारी कारण कहने का उपचार भी लागू नहीं होता। यह बात अलग है कि जगत में कार्य न होने पर भी अनुकूल बाह्य पदार्थों को रूढ़िगत सहकारी या निमित्त कारण कहा जाता है।

जैसे – सम्यग्दर्शन होने पर ही देव-शास्त्र-गुरु और उनकी श्रद्धा को सहकारी कारण कहा जा सकता है, फिर भी जगत में सामान्यरूप से देव-शास्त्र-गुरु और उनकी श्रद्धा को सम्यग्दर्शन का निमित्त या सहकारी कारण कहा जाता है, चाहे किसी को सम्यग्दर्शन हो या न हो या फिर कोई अज्ञानी उनका स्वरूप विपरीत समझकर मिथ्यात्व का पोषण भी क्यों न कर लें।

वेश्या के लक्ष्य से ज्ञानी वैराग्य का और अज्ञानी राग का पोषण करते हैं, फिर भी जगत में वैश्या को राग का ही निमित्त कहा जाता है, वैराग्य का नहीं और यही उचित है।

पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका के अध्याय ३ के ५३वें छन्द में भी भवितव्यता वह करती है जो उसे रुचता है – ऐसा कहकर सज्जनों को मोह-राग-द्वेष का त्याग करने की प्रेरणा दी गई है।

पण्डित आशाधरजी ने अध्यात्म रहस्य में कर्तृत्व का अहंकार छोड़कर भगवती भवितव्यता का आश्रय लेने की प्रेरणा दी है। यहाँ भगवती, विशेषण उसकी महानता को बताता है।

पण्डित जुगलकिशोरजी मुख्तार के अनुसार कार्य की उत्पत्ति सर्वज्ञ के ज्ञान-अनुसार होगी इस कथन में भी कोई विरोध नहीं है। वे लिखते हैं कि सर्वज्ञ भगवान भवितव्यता के अनुसार होने वाले कार्य के साथ उसके सभी कारणों को भी जानते हैं; अतः एकान्त नियतिवाद या एकान्त भवितव्यता का प्रसंग नहीं आता।

पदार्थों का परिणमन सर्वज्ञ के ज्ञान के आधीन नहीं है, अपितु जैसा परिणमन होना है, वैसा ज्ञान योग्यतानुसार स्वयं होता है; इसलिए ज्ञान ज्ञेयाकार अर्थात् ज्ञेय के अनुसार है, ज्ञेय ज्ञानाकार नहीं है, अर्थात् ज्ञान के आधीन नहीं है।

पण्डित टोडरमलजी ने भी कषायों के अनुसार कार्य नहीं होता, अपितु भवितव्यता के अनुसार कार्य होता है - ऐसा कहकर कषाय को दुःख का कारण कहकर उसे छोड़ने की प्रेरणा दी है। यदि कषायों के अनुसार कार्य की उत्पत्ति होना माना जाए तो -

१. वस्तु का परिणमन कषाय के आधीन हो जाएगा, जिससे वस्तु के स्वतंत्र परिणमन की व्यवस्था खण्डित हो जाएगी।

२. किसी एक कार्य के सम्बन्ध में हर व्यक्ति की इच्छा अलग-अलग होती है। किसान चाहता है कि वर्षा हो और कुम्हार चाहता है कि वर्षा न हो। कोई व्यक्ति अपने शत्रु को हानि पहुँचाना चाहता है और उस कथित शत्रु का मित्र उसे लाभ पहुँचाना चाहता है। इसप्रकार परस्पर विरुद्ध इच्छाएँ होने से वस्तु के परिणमन का क्या नियम होगा? अतः कषायों के अनुसार कार्य की उत्पत्ति होना असम्भव है।

काललब्धि का महत्त्व :- तीर्थंकर भगवान महावीर की दिव्यध्वनि उन्हें केवलज्ञान होने के बाद भी ६६ दिन तक नहीं खिरी - यह घटना सर्वविदित है। इस सम्बन्ध में कषायपाहुड़ व धवला में दिये गए प्रश्नोत्तर रोचक तो हैं ही; काललब्धि का महत्व बताने वाले भी हैं।

६६ दिन तक दिव्यध्वनि क्यों नहीं खिरी? इसके उत्तर में पहले तो निमित्त की

मुख्यता से उत्तर दिया गया कि गणधर नहीं थे। फिर सौधर्म इन्द्र ने गणधर को तत्काल उपस्थित क्यों नहीं किया? इस प्रश्न का उत्तर काललब्धि की मुख्यता से देते हुए सौधर्म इन्द्र जैसे शक्तिशाली व्यवस्थापक को भी 'असहाय' कह दिया है।

इसीप्रकार किसी भी घटना के सम्बन्ध में यदि यह प्रश्न किया जाए कि यह कार्य अभी क्यों हुआ? तो काललब्धि का विचार करने पर ही समाधान होता है। द्वितीय प्रश्न भी काल की तरफ से है कि सौधर्म इन्द्र ने उसी समय गणधर को उपस्थित क्यों नहीं किया? इसलिए इसका उत्तर भी काल से दिया गया है?

हमारे दैनिक जीवन में भी ऐसे अनेक प्रसंग बनते हैं कि किसी समस्या का समाधान सूझने पर हम महसूस करते हैं कि यह बात हमारे ख्याल में पहले क्यों नहीं आई? यदि पहले ही ऐसा कर लेते तो इतना समय व्यर्थ न जाता, काम भी न बिगड़ता? जब बहुत देर तक बस की प्रतीक्षा करने के बाद टैक्सी या ऑटो रिक्शे से जाने का निर्णय किया जाता है, तब यही विकल्प होता है कि पहले ही टैक्सी क्यों न कर ली? इत्यादि अनेक विकल्पों का समाधान यह काललब्धि ही करती है।

निमित्ताधीन दृष्टिवाले काललब्धि पर ध्यान न देकर निमित्त को ही कर्त्ता मानकर कहते हैं कि जब निमित्त आया, तब कार्य हुआ? परन्तु यह प्रश्न तो निमित्त के बारे में भी खड़ा रहता है कि निमित्त तभी क्यों आया? पहले क्यों नहीं आया? इसका समाधान भी काललब्धि से ही होता है।

गहराई से विचार किया जाए तो निमित्त मिलने पर भी विवक्षित कार्य तुरन्त नहीं हो जाता है। पानी को अग्नि पर रखते ही वह तुरन्त गर्म क्यों नहीं होता? कुछ समय क्यों लगता है? गुरु का निमित्त मिलने पर भी ज्ञान तुरन्त क्यों नहीं हो जाता? उन्हें एक ही विषय को बार-बार क्यों समझाना पड़ता है? इत्यादि अनेक परिस्थितियाँ तत्समय की योग्यता अर्थात् काललब्धि के महत्व को स्पष्ट करती हैं।

उक्त प्रश्नोत्तर से वस्तुस्वरूप समझने का एक गम्भीर रहस्यात्मक सूत्र प्रगट होता है। लोक में घटित होनेवाली कोई भी घटना हो। वह क्यों हुई? ऐसा प्रश्न किया जाए, फिर उसका जो भी उत्तर हमारे ख्याल में आए उसमें भी

ऐसा क्यों हुआ? ऐसा प्रश्न पुनः किया जाए। उसके सम्भावित उत्तर में ऐसा क्यों हुआ? पुनः प्रश्न किया जाए। इसप्रकार प्रश्नोत्तर करते-करते भवितव्यता का यथार्थ स्वरूप समझा जा सकता है।

एक व्यक्ति स्कूटर से कहीं जा रहा था। पीछे से तेज गति से आते हुए एक ट्रक ने उसे टक्कर मार दी, जिससे उस व्यक्ति की तत्काल मृत्यु हो गई? अब निम्नानुसार प्रश्नोत्तर सम्भावित हो सकते हैं :-

प्रश्न :- यह दुर्घटना कैसे हुई?

उत्तर :- ट्रक चालक तेज गति से ट्रक चला रहा था, इसलिए टक्कर लग गई?

प्रश्न :- ट्रक चालक तेज क्यों चला रहा था?

उत्तर :- ड्राईवर शराब के नशे में था, इसलिए उसे तेज गति का ध्यान नहीं था।

प्रश्न :- ड्राईवर ने शराब क्यों पी थी?

उत्तर :- प्रायः सभी ड्राईवर शराब पीकर ही चलाते हैं। उसे तो बचपन से ही शराब पीने की आदत पड़ गई थी।

प्रश्न :- उसे बचपन से ऐसी आदत क्यों पड़ गई थी ?

उत्तर :- वह निम्न कुल में जन्मा था। उसका पिता भी ड्राईवर था और वह भी शराब पीता था, फिर नशे में उसकी माँ को गालियाँ देता था, मारता था - वह सब देख कर उसकी आदत ऐसी पड़ गई।

प्रश्न :- यह व्यक्ति ऐसे कुल में क्यों जन्मा? जैन कुल में जन्मा होता तो तत्त्वज्ञान और सदाचार के संस्कार पढ़ते, जिनसे वह सदाचारी विद्वान बन जाता?

उत्तर :- इसमें कोई क्या कर सकता है? यह तो अपने-अपने कर्मों का फल है। उसने ऐसे ही अशुभ कर्मों का बन्ध किया था, जिससे ऐसा संयोग मिला।

प्रश्न :- उसने ऐसे अशुभ कर्म क्यों बाँधे?

उत्तर :- कर्म तो अपने भावों के अनुसार बँधते हैं उसने ऐसे ही भाव किये थे।

प्रश्न :- उसने ऐसे भाव क्यों किये? अच्छे भाव क्यों नहीं किये?

उत्तर :- यह तो जीव की तत्समय की योग्यता पर निर्भर है। उस समय ऐसे ही भाव होना थे अतः हुए। इसमें वह स्वयं या अन्य कोई क्या कर सकता है?

जरा सोचिए! अन्तिम प्रश्न का उत्तर इसके अलावा और क्या हो सकता है? इसीप्रकार अन्य घटनाओं का विश्लेषण करके भी यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है। यहाँ अन्तिम उत्तर में अलंघ्य शक्ति वाली भवितव्यता के ही दर्शन हो रहे हैं। यद्यपि यह बात अन्तिम प्रश्न के उत्तर में आई है, तथापि उक्त घटना के प्रत्येक अंश में व्याप्त है। जब बात भवितव्यता पर आ गई तब आगे कोई प्रश्न भी शेष नहीं रह जाता। सभी विकल्प समाप्त हो जाते हैं, किसी में इष्ट-अनिष्ट बुद्धि नहीं रहती और दृष्टि सहज ही स्वसन्मुख होने का अपूर्व पुरुषार्थ प्रगट कर लेती है।

प्रश्न :-

२७. *निम्नलिखित वाक्यों का अर्थ स्पष्ट कीजिए :-*
   अ. कार्य की उत्पत्ति हेतुद्वय से होती है?
   ब. विवक्षित कार्य ही भवितव्यता का लिंङ्ग/ज्ञापक-हेतु है?
   स. भवितव्यता की शक्ति अलंघ्य है?
   द. भवितव्यता के बिना अनेक सहकारी कारण मिलने पर भी कार्य उत्पन्न नहीं होता?

२८. *कार्य की उत्पत्ति सर्वज्ञ के ज्ञानानुसार होती है या भवितव्यता के अनुसार?*

२९. *विवक्षित कार्य में और भवितव्यता में कौन-सा सम्बन्ध है?*

३०. कषायों के अनुसार कार्य होना असम्भव क्यों है?

३१. तीर्थंकर महावीर की दिव्यध्वनि ६६ दिन क्यों नहीं खिरी? इस प्रश्न का उत्तर कषाय पाहुड़/धवला में किस अपेक्षा से दिया गया है?

३२. काललब्धि आने पर ही कार्य उत्पन्न होता है – ऐसा मानने से क्या लाभ है?

३३. प्रत्येक कार्य भवितव्यता के अनुसार होता है? यह समझने के लिए किसी घटना में प्रश्नोत्तर की श्रृंखला का उदाहरण प्रस्तुत कीजिए?

****

रागी जीव भी पर–पदार्थों के परिणमन का कर्त्ता नहीं है।

गद्यांश १५

इस पर कई लोग कहते हैं...............................पर मैं तो कर सकता हूँ।

(पृष्ठ २६ पैरा ७ से पृष्ठ २७ पैरा ५ तक)

विचार बिन्दु :–

१. उक्त गद्यांश में अज्ञानी की मान्यता के पक्ष में तर्क प्रस्तुत हुए उनका समाधान किया गया है।

अज्ञानी कहता है कि भगवान वीतरागी हैं, जगत के ज्ञाता–दृष्टा हैं, कर्त्ता–धर्त्ता नहीं, अतः वे पर–पदार्थों का परिणमन नहीं बदल सकते, परन्तु हम तो रागी हैं, अल्पज्ञ हैं, हमें कुछ कर दिखाने की तमन्ना भी है, अतः हमारी तुलना सर्वज्ञ भगवान से नहीं करना चाहिए। हम क्यों नहीं बदल सकते? यदि हम नहीं बदल सकते, तो हमारा परिणमन भगवान के ज्ञान के आधीन हो जाएगा।

२. वस्तु का परिणमन अपनी योग्यतानुसार स्वतंत्र होता है, ज्ञान तो उसे जानता मात्र है, परिणमता नहीं है। ज्ञान, वस्तु के परिणमन में कोई हस्तक्षेप नहीं करता, इसलिए ज्ञान में ज्ञात होने मात्र से वस्तु की स्वतंत्रता खण्डित नहीं होती।

यदि कोई यह कहे कि भगवान पर–पदार्थों का परिणमन नहीं बदल सकते परन्तु हम तो बदल सकते हैं, तो उसका यह कहना हास्यास्पद है, क्योंकि जो कार्य अनन्तवीर्य के धनी सर्वज्ञ भगवान नहीं कर सकते, वह कार्य यह अल्पवीर्यवान

अल्पज्ञ करना चाहता है।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ३२०–२१–२२ में इन्द्र भी पर में परिवर्तन नहीं कर सकते – ऐसा कहकर अल्पज्ञ और रागियों के पर–कर्तृत्व का निषेध किया गया है। अल्पज्ञ और रागियों में इन्द्र ही सर्वाधिक शक्तिशाली हैं, जब वह भी वस्तु के परिणमन को नहीं टाल सकते तो अन्य लोग कैसे टाल सकते हैं?

प्रश्न :–

३४. अज्ञानी स्वयं को पर–पदार्थों के परिणमन में फेरफार का कर्त्ता किस आधार पर कहता है?

३५. अज्ञानी की मान्यता गलत क्यों है?

३६. वस्तु का परिणमन ज्ञान के आधीन क्यों नहीं है?

३७. अल्पज्ञ और रागी भी वस्तु के परिणमन में परिवर्तन नहीं कर सकता – यह बात आचार्यदेव ने कहाँ लिखी है?

****

पर–पदार्थों के परिणमन की चिन्ता करना व्यर्थ है

गद्यांश १६

क्रमबद्ध पर्याय के पोषक....................................जब तक अज्ञान है।

(पृष्ठ २७ पैरा ६ से पृष्ठ २९ पैरा १ तक)

विचार बिन्दु :–

१. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता–हर्त्ता–धर्त्ता नहीं है – यह सिद्धान्त ही जैन–दर्शन का मूल्य आधार है। ऐसी श्रद्धा होना ही क्रमबद्धपर्याय समझने का उद्देश्य है।

२. जिसप्रकार नित्यता वस्तु का स्वभाव है, उसीप्रकार परिणमन करना भी वस्तु का सहज स्वभाव है, इसलिए प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय का कर्त्ता स्वयं है। अपने परिणमन के लिए उसे पर–द्रव्य के सहयोग की रञ्चमात्र भी

आवश्यकता नहीं है, इसलिए हमें भी उसके बारे में चिन्ता करने की रञ्चमात्र भी आवश्यकता भी नहीं है। पर-द्रव्यों की बात तो ठीक है, हमें अपने परिणमन की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं हैं। अजीव द्रव्य भी तो अपने या पर के परिणमन की चिन्ता नहीं करते, फिर भी उनका परिणमन व्यवस्थित होता रहता है, फिर हम अपने या पर के परिणमन की चिन्ता करके दुःखी क्यों हों?

हम पर-पदार्थों का कुछ नहीं कर सकते, कर्तृत्व का अभिमान मात्र करते हैं। हमारी दशा चलती गाड़ी के नीचे चलने वाले कुत्ते जैसी हो रही है।

हम पर-पदार्थों या अपनी पर्यायों में परिवर्तन तो कर नहीं सकते, मात्र करने की चिन्ता करते हैं और चिन्ता के कर्त्ता तभी तक है जब तक अज्ञान है। क्रमबद्ध-पर्याय की श्रद्धा ही हमें इस चिन्ता से मुक्त करके निश्चिन्त कर सकती है।

प्रश्न :-

३८. क्रमबद्ध-पर्याय समझने का मूल उद्देश्य क्या है?

३९. हमें पर-पदार्थों और अपनी पर्यायों के क्रम में परिवर्तन की चिन्ता क्यों नहीं करना चाहिए?

४०. हमें पर और पर्यायों की चिन्ता से मुक्त कौन कर सकता है?

****

जैन-दर्शन का अकर्त्तावाद

गद्यांश १७

जैन-दर्शन अकर्त्तावादी.....................................परिणाम का कर्त्ता है।

(पृष्ठ २९ पैरा २ से पृष्ठ ३१ पैरा ४ तक)

विचार बिन्दु :-

१. जैन-दर्शन अकर्त्तावादी दर्शन है। अकर्त्तावाद में निम्न सिद्धान्त गर्भित हैं।

अ. ईश्वर जगत् का कर्त्ता नहीं है।

ब. एक द्रव्य किसी अन्य द्रव्य के परिणमन का कर्त्ता नहीं है।

स. ज्ञानी जीव अपने विकारी परिणामों के भी कर्त्ता नहीं है।

द. परमार्थ से द्रव्य अपनी पर्यायों का कर्त्ता भी नहीं है। परन्तु यहाँ इस अपेक्षा की मुख्यता नहीं है। यहाँ तो प्रत्येक द्रव्य अपने परिणामों का कर्त्ता अवश्य है, परन्तु वह उनके क्रम में कुछ परिवर्तन का कर्त्ता नहीं है - यह अपेक्षा मुख्य है।

२. स्वकर्तृत्व, सहज कर्तृत्व, और अकर्तृत्व - इन तीनों का एक ही अर्थ है।

स्वकर्त्तृत्व :- अपनी पर्यायों का कर्त्ता होना स्वकर्त्तृत्व है।

सहज कर्त्तृत्व :- पर के सहयोग की अपेक्षा तथा परिणमन की चिन्ता किए बिना अपने आप अपने स्वकाल में पर्यायें उत्पन्न होना सहज कर्त्तृत्व है।

अकर्त्तत्व :- पर-पदार्थों में तन्मय न होना तथा अपनी पर्यायों के क्रम में परिवर्तन की बुद्धि न करके उनका सहज ज्ञाता-दृष्टा रहना अकर्त्तृत्व है।

पर्यायें अपने सुनिश्चित क्रमानुसार उत्पन्न होती हैं, इसका आशय यह नहीं है कि वे द्रव्य के किए बिना हो जाती हैं। द्रव्य उस पर्यायरूप परिणमित होकर उनका कर्त्ता होता है। ज्ञानी अपने निर्मल परिणामों का कर्त्ता होता है तथा अज्ञानी अपने अज्ञानभाव का कर्त्ता है। इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य स्वयं ही अपने क्रमबद्ध परिणामों का कर्त्ता है।

३. द्रव्य और पर्याय में कथञ्चित् भिन्नता की अपेक्षा द्रव्य को अपनी पर्यायों का भी अकर्त्ता तथा पर्याय का कर्त्ता पर्याय को ही कहा जाता है। इसका प्रयोजन भी पर्याय दृष्टि छुड़ाकर द्रव्य-दृष्टि कराना है। परन्तु यहाँ यह विवक्षा नहीं है।

प्रश्न :-

४०. जैन-दर्शन में अकर्त्तावाद के मुख्य बिन्दु कौन-कौन से हैं?

४१. स्वकर्त्तृत्व, सहज कर्त्तृत्व और अकर्त्तृत्व की परिभाषायें बताइये?

४२. आत्मा अपनी पर्यायों का कर्त्ता किस प्रकार है?

****

परिणमन करना वस्तु का सहज स्वभाव है

गद्यांश १८

इसी बात को यदि...भार को भार में।

(पृष्ठ ३१ पैरा ५ से पृष्ठ ३३ पैरा ५ तक)

विचार बिन्दु :-

१. प्रत्येक द्रव्य द्रव्यत्व गुण के कारण परिणमन स्वभावी है। जो द्रवे अर्थात् परिणमन करे, उसे द्रव्य कहते हैं; अतः द्रव्य अपने नियमित प्रवाह क्रम में निरन्तर बहता रहता है, इसलिये वह अपने प्रवाह क्रम को भंग क्यों करेगा?

२. प्रत्येक पर्याय अपने स्वकाल में खचित है इसलिए उसे उसके स्वकाल से हटाना सम्भव नहीं है।

३. हमें उपर्युक्त वस्तु स्वरूप को सहज स्वीकार कर लेना चाहिए। यह स्वीकृति ही धर्म का आरम्भ है, क्योंकि इससे दृष्टि सहज ही स्वभाव सन्मुख हो जाती है। जो क्रमबद्ध पर्याय को स्वीकार करता है, उसकी पर्यायों में स्वभाव सन्मुखता का क्रम प्रारम्भ हो जाता है। वस्तु-स्वरूप में ऐसा सुव्यवस्थित सुमेल है। प्रवचनसार गाथा १०७ में द्रव्य और गुण के समान पर्याय को भी एक समय का सत् कहा है।

४. अज्ञानी को अपने द्रव्य-गुण का ज्ञान नहीं है, इसलिए उसकी दृष्टि पर्यायों को बदलने के विकल्प में उलझी रहती है, द्रव्य-स्वभाव पर नहीं जाती है, अतः वह पर्यायमूढ़ बना रहता है। पर्याय को स्वकाल का सत् स्वीकार करने पर उन्हें बदलने का बोझा उतर जाता है, और दृष्टि निर्भार होकर अन्तर में प्रवेश करती है।

प्रश्न :-

४३. द्रव्य किसे कहते हैं? उसका स्वभाव क्या है?

४४. द्रव्य की पर्याय को उसके स्वकाल से हटाना सम्भव क्यों नहीं है?

४५. दृष्टि स्वभाव-सन्मुख किस प्रकार होती है?

४६. अज्ञानी की दृष्टि अपनी पर्यायों को बदलने के विकल्प में क्यों उलझी रहती है?

अज्ञानी की विपरीत मान्यता

गद्यांश १९

भार लेकर ऊपर चढ़ना....................................कर्त्तृत्व थोप रहा है।

(पृष्ठ ३३ पैरा ६ से ३४ सम्पूर्ण)

विचार बिन्दु :-

१. जिसप्रकार अपनी शक्ति से अधिक बोझा ढोते हुए पर्वत पर चढ़ना असम्भव है; उसीप्रकार पर-कर्त्तृत्व का बोझा ढोते हुए दृष्टि का स्वभाव में प्रवेश करना असम्भव है।

२. स्वयं परिणमनशील इस जगत के परिणमन का उत्तरदायित्व हमारे माथे नहीं है; फिर भी अज्ञानी अपनी मिथ्या कल्पना से पर को परिणमित कराने के बोझ से दबा जा रहा है।

३. गम्भीरता से विचार करें तो इस शरीर परिणमन के कर्त्ता भी हम नहीं हैं, तो अन्य पदार्थों का परिणमन करने की बात ही कहाँ रही?

विशेष निर्देश :- पाठ्य पुस्तक में दिए गये तर्कों के आधार पर स्पष्ट करें कि हम शरीर के परिणमन के भी कर्त्ता नहीं हैं।

प्रश्न :-

४७. अज्ञानी की दृष्टि, स्वभाव में प्रवेश क्यों नहीं कर सकती?

४८. हम अपने शरीर के परिणमन के कर्त्ता भी नहीं हैं - यह बात कैसे सिद्ध होती है?

****

ज्ञान का परिणमन भी इच्छाधीन नहीं है?

गद्यांश २०

इस पर कुछ लोग कहते हैं.................................विचार किया जाएगा।

(पृष्ठ ३५ पैरा १ से ३७ पैरा ६ तक)

विचार बिन्दु :–

१. अज्ञानी कहता है कि भले हम पर-पदार्थों का परिणमन नहीं कर सकते, परन्तु ज्ञान तो हमारी पर्याय है, इसलिए हम यह तो निश्चित कर ही सकते हैं कि हम किस ज्ञेय को जानें और किस ज्ञेय को न जानें? अतः हम ज्ञान पर्याय को स्वभाव-सन्मुख तो कर ही सकते हैं?

२. ज्ञान को स्वभाव-सन्मुख करने के विकल्पों से ज्ञान स्वभाव-सन्मुख नहीं होता, अपितु इस विकल्प के भार से भी निर्भार होने पर ज्ञान स्वभाव-सन्मुख होता है। ज्ञान की जिस पर्याय में जिस ज्ञेय को जानने की योग्यता है, वह पर्याय उसी ज्ञेय को अपना विषय बनायेगी, उसमें किसी का कोई हस्तक्षेप नहीं चल सकता।

३. ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, अपितु ज्ञान की योग्यतानुसार ज्ञेय जाना जाता है। (प्रमेय रत्नमाला में दिये गये उदाहरण तथा अन्य उदाहरणों से स्पष्ट करना)।

४. विशिष्ट ज्ञेय सम्बन्धी आवरण कर्म का क्षयोपशम जिसका लक्षण है ऐसी योग्यता ही ज्ञान के ज्ञेय को सुनिश्चित करती है।

५. बौद्ध-दर्शन में ज्ञान की ज्ञेय से उत्पत्ति, ज्ञान का ज्ञेयाकार परिणमन तथा ज्ञान का ज्ञेयों में व्यवसाय अर्थात् ज्ञेय को जानना स्वीकार किया जाता है; परन्तु जैन-दर्शन में, योग्यता के आधार पर ज्ञान का परिणमन माना गया है।

६. प्रत्येक पर्याय का ज्ञेय भी निश्चित है, अतः हमें स्व को जानने का बोझ भी नहीं रखना है, तभी हमारी दृष्टि स्वभाव सन्मुख होगी। उपदेश में ऐसी भाषा आती है कि दृष्टि को आत्म-सन्मुख करो अर्थात् आत्मा को जानो परन्तु यह कथन उपचार से है।

प्रश्न :–

४९. स्व को जानने के सम्बन्ध में अज्ञानी की क्या मान्यता है?

५०. ज्ञेय को जानने के सम्बन्ध में बौद्धों की क्या मान्यता है?

५१. ज्ञान द्वारा ज्ञेयों को जानने की क्या व्यवस्था है?

५२. दृष्टि स्वभाव-सन्मुख किस प्रकार होती है?

****

प्रत्येक पर्याय स्वकाल में सत् है

गद्यांश २१

प्रत्येक द्रव्य पर्वत है....................................होने का एक काल है।

(पृष्ठ ३७ पैरा ७ से पृष्ठ ३९ पैरा ४ तक)

विचार बिन्दु :–

१. जिसप्रकार द्रव्य पर्वत के समान अचल है, उसी प्रकार पर्याय भी अचला है, उसे चलायमान करना सम्भव नहीं है। द्रव्य के समान पर्याय स्वभाव भी अनन्त शक्तिशाली है। उसे उसके स्वसमय से हटाने में कोई भी समर्थ नहीं है।

२. द्रव्य त्रिकाल का सत् है, और पर्याय स्वकाल की सत् है अर्थात् वह भी सती है। उसे छेड़ने की मान्यता घोर अपराध है, जिसका फल चतुर्गति में भ्रमण है।

३. द्रव्य गुण की अचलता हमें सहज स्वीकृत है, इसलिए उनमें परिवर्तन करने का विकल्प नहीं आता, परन्तु पर्याय की अचलता हमारे ख्याल में नहीं आती, अतः उसमें फेरफार करने की बुद्धि बनी रहती है, जो क्रमबद्ध पर्याय को समझने से मिट जाती है।

४. पर्यायों में फेरफार करने की बुद्धि ही अज्ञान है, यही कर्त्तावाद है, जिसका निषेध समयसार के कर्त्ताकर्म अधिकार और सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में किया

गया है।

५. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता नहीं है, तथा द्रव्य अपनी पर्यायों का कर्त्ता होते हुए भी उनमें फेरफार कर्त्ता नहीं है – यही जैन-दर्शन के अकर्त्तावाद का चरम बिन्दु है।

६. स्वभाव-सन्मुख दृष्टि होकर सम्यग्दर्शन प्राप्त होना ही क्रमबद्धपर्याय की सच्ची श्रद्धा है। सम्यग्दर्शन ही उसका फल है। यदि क्रमबद्धपर्याय को मानने पर भी स्वभावसन्मुख दृष्टि नहीं हुई, तो समझना चाहिए कि हमें शास्त्रज्ञान से उत्पन्न धारणारूप विकल्पात्मक श्रद्धा मात्र हुई है, सच्ची श्रद्धा नहीं।

प्रश्न :–

५३. *द्रव्य में पर्याय की महत्ता उदाहरण सहित समझाइये?*
५४. *पर्यायों में परिवर्तन की बुद्धि अज्ञान क्यों है?*
५५. *जैन-दर्शन के अकर्त्तावाद का चरम बिन्दु क्या है?*
५६. *क्रमबद्धपर्याय की विकल्पात्मक श्रद्धा और सच्ची श्रद्धा क्या है?*
५७. *क्रमबद्धपर्याय की सच्ची श्रद्धा का क्या फल है?*

****

क्रमबद्धपर्याय, एकान्त नियतिवाद और पुरुषार्थ

गद्यांश २२

कुछ लोगों का यह भी.....................................सच्चे अनेकान्तवादी हैं।

(पृष्ठ ३९ पैरा ५ से पृष्ठ ४० से पैरा ४ तक + पृष्ठ ४१ पैरा ७ से पृष्ठ ४२ पैरा ५ तक)

विचार बिन्दु :–

१. गोम्मटसार में एकान्त नियतिवादी को मिथ्यादृष्टि कहा है, अतः कुछ लोग क्रमबद्धपर्याय को भी एकान्त नियतिवाद अर्थात् मिथ्यात्व कहते हैं; परन्तु उनकी यह मान्यता सही नहीं है। पुरुषार्थ आदि अन्य समवायों का निषेध करना एकान्त नियतिवाद है, जबकि क्रमबद्ध पर्याय की श्रद्धा में एकान्त नियतिवाद या मिथ्यात्व नहीं है, क्योंकि इसमें अन्य समवायों का निषेध नहीं अपितु उनकी स्वीकृति है।

२. जिनेन्द्र सिद्धान्त कोष में 'नियति' देव 'काललब्धि' और भवितव्य को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है।

''जो कार्य या पर्याय जिस निमित्त के द्वारा जिस द्रव्य में जिस क्षेत्र व काल में उसी प्रकार से होना है, वह कार्य उसी निमित्त के द्वारा उसी द्रव्य, क्षेत्र व काल में उसी प्रकार से होता है। ऐसी द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावरूप चतुष्टय से समुदित नियत कार्य व्यवस्था को नियति कहते हैं।

नियत कर्मोदयरूप निमित्त की अपेक्षा से इसे ही 'दैव' नियत काल की अपेक्षा इसे ही काललब्धि' और होने योग्य कार्य की अपेक्षा इसे ही 'भवितव्य' कहते हैं।''

३. करने-धरने के विकल्पवाली रागी बुद्धि में सब कुछ अनियत प्रतीत होता है, और निर्विकल्प समाधि के साक्षीमात्र भाव में विश्व की समस्त कार्य व्यवस्था नियत होती है।

४. गोम्मटसार में जिस एकान्त नियतिवादी का वर्णन किया गया है, वह जीव स्वच्छन्दी है, उसने ज्ञान स्वभाव का निर्णय नहीं किया है, अतः वह गृहीत मिथ्यादृष्टि है। ज्ञानस्वभाव के निर्णयपूर्वक यदि इस क्रमबद्धपर्याय को समझें, तो स्वभाव-सन्मुख पुरुषार्थ द्वारा मिथ्यात्व और स्वच्छन्ता टूट जाती है।

५. क्रमबद्धपर्याय को मानने पर पुरुषार्थ उड़ जाता है ऐसा अज्ञानी मानते हैं। क्रमबद्धपर्याय के निर्णय से कर्त्ता-बुद्धि का मिथ्या अभिमान टूट जाता है और निरन्तर ज्ञायकपने का सच्चा पुरुषार्थ होता है।

६. ''ज्ञायक स्वभाव के आश्रय से पुरुषार्थ होता है, तथापि पर्यायों का क्रम नहीं टूटता। देखो, यह वस्तु स्थिति! पुरुषार्थ भी नहीं उड़ता और क्रम भी नहीं टूटता। ज्ञायक स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि का पुरुषार्थ होता है और वैसी निर्मल दशायें होती जाती है, तथापि पर्यायों की क्रमबद्धता नहीं टूटती।''

विशेष निर्देश :– उपर्युक्त गद्यांश पर विशेष ध्यानाकर्षित करते हुए स्पष्टीकरण किया जाए।

७. उक्त कथनों से स्पष्ट है कि एकान्त नियतिवाद और क्रमबद्धपर्याय भिन्न-भिन्न हैं, इनमें कोई समानता नहीं है। स्वामीजी एकान्त नियतवाद के पोषक नहीं, अपितु सच्चे अनेकान्तवादी हैं।

प्रश्न :-

५८. एकान्त नियतिवाद क्या है?

५९. क्रमबद्धपर्याय को स्वीकार करने के एकान्त नियतवाद क्यों नहीं होता?

६०. क्रमबद्धपर्याय को मानने में पुरुषार्थ किस प्रकार होता है?

६१. 'नियति', 'दैव', 'काललब्धि' और 'भवितव्य' की परिभाषा लिखिए?

पाँच समवाय

गद्यांश २३

कार्योत्पत्ति में पञ्च कारणों.....................................ऐसा प्रयोजन है।

(पृष्ठ ४० पैरा ५ से पृष्ठ ४१ से पैरा ६ तक)

विचार बिन्दु :-

१. प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति में पाँच समवाय अवश्य होते हैं। स्वभाव, पुरुषार्थ, भवितव्यता (होनहार या नियति) काललब्धि, निमित्त। इस निर्देशिका के मंगलाचरण के पिछले पृष्ठ पर दिए गए काव्य द्वारा इनका स्वरूप निम्नानुसार समझा जा सकता है।

स्वभाव :- वस्तु में विवक्षित कार्य उत्पन्न करने की शक्ति।

पुरुषार्थ :- विवक्षित कार्यरूप परिणमि होने में वस्तु की शक्ति का उपयोग।

होनहार :- होने योग्य विवक्षित कार्य।

काललब्धि :- विवक्षित कार्य की उत्पत्ति का स्वकाल।

निमित्त :- विवक्षित कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल बाह्य-पदार्थ।

२. उपर्युक्त पाँचों समवायों में से किसी एक से ही कार्य की उत्पत्ति मानना एवं अन्य समवायों का निषेध करना एकान्त मिथ्यात्व है, तथा कार्योत्पत्ति में प्रत्येक समवाय का योगदान स्वीकार करना सम्यक्-अनेकान्त है।

३. प्रत्येक समवाय का निषेध करने से उत्पन्न होने वाली परिस्थिति का विश्लेषण करते हुए उसकी उपयोगिता सिद्ध की जा सकती है। जैसे - यदि स्वभाव को स्वीकार न किया जाए, तो रेत में से भी तेल निकलना चाहिए।

इसीप्रकार किसी एक समवाय को ही सर्वथा स्वीकार करने से उत्पन्न परिस्थिति का विश्लेषण करते हुए सर्वथा एकान्त को मिथ्या सिद्ध करना चाहिए। जैसे - यदि स्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी समवाय को न माना जाए तो तिल में से अपने आप हमेशा तेल निकलते रहना चाहिए।

पाठ्य पुस्तक के पृष्ठ ६८ पर पाँचों समवायों के सम्बन्ध में पण्डित टोडरमलजी के विचार दिए हैं, वहाँ इनकी विशेष चर्चा की जाएगी।

प्रश्न :-

६२. पाँचों समवायों की परिभाषा लिखकर कार्योत्पत्ति में इनकी अनिवार्यता सिद्ध कीजिए।

****

अनेकान्त में भी अनेकान्त

गद्यांश २४

इस पर कुछ लोग.....................................सम्यक्-अनेकान्त प्रमाण।

(पृष्ठ ४२ पैरा ६ से पृष्ठ ४४ से पैरा ६ तक)

विचार बिन्दु :-

१. कुछ लोगों को क्रमबद्धपर्याय को स्वीकार करने में एकान्त की शंका होती है। क्रमबद्धपर्याय की स्वीकृति में सम्यक्-एकान्त अवश्य है, परन्तु मिथ्या एकान्त नहीं।

२. इस सन्दर्भ में यह जानने योग्य है कि एकान्त और अनेकान्त सम्यक् और मिथ्या के भेद से दो-दो प्रकार के होते हैं, जिनका स्वरूप निम्नानुसार

है।

सापेक्ष नय सम्यक्-एकान्त है, अर्थात् विवक्षित धर्म को मुख्य एवं अन्य धर्मों को गौण करना सम्यक्-एकान्त है। जैसे - द्रव्यदृष्टि से वस्तु नित्य है।

निरपेक्षनय मिथ्या-एकान्त है, अर्थात् वस्तु को सर्वथा विवक्षित धर्मरूप ही मानना और अन्य धर्मों का सर्वथा निषेध करना मिथ्या-एकान्त है। जैसे वस्तु सर्वथा नित्य है।

सापेक्षनयों का समूह अर्थात् श्रुत-प्रमाण सम्यक्-अनेकान्त है। परस्पर सापेक्ष दोनों धर्मों की स्वीकार करना सम्यक्-अनेकान्त है। जैसे - वस्तु कथञ्चित् नित्य भी है और कथञ्चित् अनित्य भी है।

निरपेक्ष नयों का समूह अर्थात् प्रमाणाभास मिथ्या-अनेकान्त है। परस्पर निरपेक्ष दोनों धर्मों को स्वीकार करना मिथ्या-अनेकान्त है। जैसे - वस्तु सर्वथा नित्य भी है और सर्वथा अनित्य भी है। मिथ्या अनेकान्त को उभयैकान्त भी कहते हैं।

३. जैन-दर्शन में अनेकान्त को भी अनेकान्तरूप से स्वीकार किया गया है। सर्वथा एकान्तरूप से नहीं। अर्थात् जैन-दर्शन सर्वथा एकान्तवादी नहीं है, कथञ्चित् अनेकान्तवादी है और कथञ्चित एकान्तवादी है। यही अनेकान्त में अनेकान्त है।

४. अरनाथ भगवान की स्तुति करते हुए वृहद् स्वयंभूस्तोत्र छंद क्रमांक १०३ में आचार्य समन्तभद्र कहते हैं कि :-

''प्रमाण और नय हैं साधन जिनके, ऐसा अनेकान्त भी अनेकान्त स्वरूप है, क्योंकि सर्वांशग्राही प्रमाण की अपेक्षा वस्तु अनेकान्त-स्वरूप है एवं अंशग्राही नय की अपेक्षा वस्तु एकान्तरूप सिद्ध है।''

५. आचार्य अकलंक-देव ने राजवर्तिक अध्याय १ सूत्र ६ की टीका में वृक्ष के उदाहरण से सर्वथा-अनेकान्त और सर्वथा-एकान्त का खंडन किया है जिसका भाव निम्नानुसार है।

शाखा, पत्ते, पुष्प आदि अनेक अंगों का समूहरूप वृक्ष अनेकान्तरूप है तथा शाखा, पत्ते, पुष्प आदि अंग एकान्तरूप हैं। जिसप्रकार शाखा आदि अंगों का सर्वथा अभाव मानने पर उनके समुदायरूप वृक्ष के अभाव का भी प्रसंग आएगा; उसीप्रकार सम्यक्-एकान्त का निषेध करने पर सम्यक्-अनेकान्त के अभाव का भी प्रसंग आएगा।

जिसप्रकार यदि शाखा आदि किसी एक अंग का ही एकान्त स्वीकार किया जाए तो उसके अविनाभावी अन्य अंगों का भी लोप होने से सर्वलोप का प्रसंग आएगा इसीप्रकार वस्तु के एक धर्म को ही सर्वथा स्वीकार किया जाए, तो अन्य अंगों का लोप होने से वस्तु के सर्वथा अभाव का प्रसंग आएगा। इसीप्रकार यदि सम्यक्-अनेकान्तरूप वृक्ष का निषेध किया जाए तो उसके शाखा आदि अंगों अर्थात् सम्यक्-एकान्त के भी अभाव का प्रसंग आएगा। और यदि सर्वथा वृक्ष को ही स्वीकार किया जाए तो भी शाखा आदि के अभाव का प्रसंग आने से वृक्ष के लोप का भी प्रसंग आएगा।

सम्यक् एकान्त नय है और सम्यक् अनेकान्त प्रमाण, इसीलिए वस्तु कथञ्चित् (नयों की अपेक्षा) सम्यक्-एकान्तरूप और कथञ्चित् (प्रमाण की अपेक्षा) सम्यक्-अनेकान्तरूप है। वस्तु न सर्वथा एकान्तरूप है और न सर्वथा अनेकान्तरूप है। यही अनेकान्त में अनेकान्त है।

६. मिथ्या-अनेकान्त को समझाने के लिये- निम्न उदाहरण भी दिये जा सकते हैं।

१. पाँचवीं और तीसरी कक्षा की पुस्तक मिलकर आठवीं कक्षा की नहीं हो सकती।
२. युद्ध के मैदान में किसी सैनिक का सिर और किसी का धड़ मिलाकर एक सैनिक नहीं बन सकता। अतः दो सर्वथा भिन्न धर्मों के समूहरूप कोई वस्तु नहीं हो सकती।

प्रश्न :-

६३. एकान्त और अनेकान्त के दोनों भेदों को उदाहरण सहित समझाइए?

६४. जैन-दर्शन अनेकान्त में भी अनेकान्त को स्वीकार करता है। इस कथन की

उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए?

* * * *

एकान्त, अनेकान्त और क्रमबद्धपर्याय

गद्यांश २५

इस दृष्टि से विचार करने..................................गंभीरता से विचार करें।

(पृष्ठ ४४ पैरा ७ से पृष्ठ ४८ से पैरा ६ तक)

विचार बिन्दु :–

१. क्रमबद्धपर्याय की स्वीकृति में पाँच समवायों में काल की मुख्यता से कथन किया जाये तो सम्यक्–एकान्त होगा, क्योंकि इसमें पुरुषार्थ आदि समवायों को गौण किया है; उनका निषेध नहीं किया गया।

२. कार्य की उत्पत्ति पाँचों समवायों से होती है, परन्तु किसी एक समवाय को मुख्य करके उससे कार्य की उत्पत्ति कही जाती है। उस समय कथन में अन्य समवाय गौण रहते हैं, उनका अभाव अपेक्षित नहीं होता है। इसप्रकार क्रमबद्धपर्याय की व्यवस्था को सम्यक्–एकान्त भी कहा जा सकता है, जो कि सम्यक्–अनेकान्त का पूरक है, विरोधी नहीं।

३. क्रमबद्धपर्याय व्यवस्था का व्यापक स्वरूप स्पष्ट करते हुए यह पहले ही कहा जा चुका है कि ''जिस द्रव्य की, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जो पर्याय जिस विधि से तथा जिस निमित्त की उपस्थिति में होना है; उसी द्रव्य की, उसी क्षेत्र में, उसी काल में वही पर्याय, उसी विधि से तथा उसी निमित्त की उपस्थिति में होगी'' इस व्याख्या के अनुसार वस्तु की परिणमन व्यवस्था में न केवल विवक्षित परिणमन का स्वकाल निश्चित है, अपितु उस परिणमन से सम्बन्धित द्रव्य, क्षेत्र, भाव, विधि (पुरुषार्थ) निमित्त आदि सभी बातें निश्चित हैं, इसलिए वे सर्वज्ञ के ज्ञान में झलकते हैं और तदनुसार कार्य की उत्पत्ति होती है।

४. सभी सम्बन्धित पक्ष निश्चित हैं – इस व्यवस्था को इस प्रकार कहा जा सकता है कि ''जिस जीव को केवलज्ञान होना होगा, उसी को होगा, अन्य जीव को नहीं; जिस स्थान पर होना होगा, उसी स्थान पर होगा, अन्य स्थान

पर नहीं, जब होना होगा तभी होगा, अन्य समय में नहीं..... इत्यादि।

५. अज्ञानी को द्रव्य, क्षेत्र, निमित्त आदि के निश्चित होने में कोई आपत्ति नहीं होती, परन्तु काल के निश्चित होने में उसे बन्धन, पुरुषार्थ–हीनता आदि की शंका होती है। उतावलेपन की वृत्ति के कारण वह विवक्षित कार्य को जल्दी करना चाहता है, जल्दी करने में ही उसे पुरुषार्थ लगता है, तथा निश्चित समय पर, कार्य होने में उसे पुरुषार्थ–हीनता लगती है।

६. जिस जीव की सम्यक्त्वपर्याय का काल दूर होता है, उसे काल की नियमितता का विश्वास नहीं होता। लोक में भी देखा जाता है कि अल्प समय पश्चात् होने वाले कार्य को लोग सहज स्वीकार कर लेते हैं और तदनुकूल प्रयत्न करने लगते हैं; जबकि बहुत समय बाद होने वाले कार्य के प्रति उदासीन रहते हैं। परीक्षा कार्यक्रम घोषित होते ही विद्यार्थी–गण पढ़ाई में लग जाते हैं, तथा जब तक परीक्षा कार्यक्रम घोषित न हो, तब तक पढ़ाई में एकाग्र नहीं होते। इससे सिद्ध होता है कि जिसका आत्महित का काल दूर है, उन्हें काल का निश्चित होना नहीं सुहाता, इसलिए वे पर्यायों के क्रम में परिवर्तन की मिथ्याबुद्धि से ग्रस्त रहते हैं और स्वभाव–सन्मुखता का पुरुषार्थ नहीं करते।

आज सारी दुनिया उतावली हो रही है, विषयों में अन्धी होकर दौड़ रही है। यह अपनी दौड़ में इतनी व्यवस्त है कि कहाँ जाना है और क्यों जाना है? इसका विचार करने की भी उसे फुरसत नहीं है। कहा भी है :–

भोगों को अमृतफल जाना, विषयों में निशदिन मस्त रहा।

उनके संग्रह में हे प्रभुवर, मैं व्यस्त त्रस्त अभ्यस्त रहा॥

विशेष निर्देश :– उक्त पंक्तियों में 'व्यस्त' 'त्रस्त' और 'अभ्यस्त' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य हैं। इन्हें उदाहरण देकर समझाना चाहिए।

७. किसी भी चौराहे पर इस जगत का उतावलापना देखा जा सकता है, जहाँ मौत की कीमत पर भी व्यक्ति दो मिनिट भी रुकना नहीं चाहता। ऐसे उतावले और अधीर लोगों की समझ में यह बात कैसे आ सकती है कि जो कार्य जब होना होगा तभी होगा। धैर्यपूर्वक गम्भीर मनन–चिन्तन करने वाले

वीर पुरुषों की समझ में ही यह बात आ सकती है। वही जीव सच्चा पुरुषार्थ प्रगट कर सकता है। इसे समझने के लिए पक्ष-व्यामोह से भी मुक्त होना चाहिए।

'धैर्य' अर्थात् जब तक यथार्थ निर्णय न हो जाए तब तक समझने के लिये प्रयत्नशील रहे, बीच में ही प्रयत्न बन्द न कर दे।

'गम्भीरता पूर्वक' अर्थात् प्रत्येक बिन्दु पर गहराई से विचार करें, स्थूल चिन्तन या हंसी-मजाक में बात को उड़ा न दें।

'वीर' अर्थात् अपनी भूल को स्वीकार करके दृष्टि को स्वभाव सन्मुख करने की क्षमता प्रगट करें।

'पक्ष-व्यामोह' अर्थात् किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय से प्रभावित होकर निर्णय करना।

प्रश्न :-

६५. *क्रमबद्धपर्याय की स्वीकृति में सम्यक्-एकान्त किसप्रकार है?*

६६. *क्रमबद्धपर्याय का व्यापक स्वरूप क्या है?*

६७. *काल की नियमितता का विश्वास किसे हो सकता है और किसे नहीं?*

६८. *जगत् के उतावलेपन की वृति को उदाहरण सहित समझाइये?*

६९. *क्रमबद्धपर्याय समझने के लिये क्या करना चाहिए?*

****

क्रमबद्धपर्याय सार्वभौमिक सत्य है

गद्यांश २६

क्रमबद्धपर्याय में...स्पष्ट किया गया है।

(पृष्ठ ४८ पैरा ७ से पृष्ठ ५१ तक सम्पूर्ण)

विचार बिन्दु :-

१. कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ३२१ से ३२३ में क्रमबद्ध परिणमन-व्यवस्था का स्पष्ट विवेचन होने पर भी कुछ लोग कहते हैं कि यह कथन तो मात्र गृहीत मिथ्यात्व छुड़ाने के लिए किया है, यह सार्वभौमिक सत्य नहीं, क्योंकि जो होना है वही

होगा - यह विचार हमें पुरुषार्थहीन बनाता है।

२. उक्त मान्यता का निराकरण सिद्धान्ताचार्य पण्डित कैलाशचन्द्रजी वाराणसी ने उक्त गाथाओं के भावार्थ में किया है। सर्वज्ञ के जान लेने से प्रत्येक पर्याय का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव नियत नहीं हुआ; बल्कि नियत होने से ही उन्होंने उसरूप में जाना है। पूर्व पर्याय से चाहे जो उत्तर पर्याय नहीं होती बल्कि नियत उत्तर पर्याय ही प्रगट होती है अन्यथा गेहूँ से आटा, कच्ची रोटी आदि पर्याय के बिना रोटी बनने का प्रसंग आएगा।

३. कुछ लोग प्रत्येक पर्याय के द्रव्य, क्षेत्र और भाव को नियत मानते हैं परन्तु काल को नियत मानने से उन्हें नियतवाद और पुरुषार्थ-हीनता का भय लगता है। परन्तु यदि द्रव्य, क्षेत्र और भाव नियत है तो काल-अनियत कैसे हो सकता? यदि काल को अनियत माना जाए तो अर्द्धपुद्गल परावर्तन से अधिक काल संसार-भ्रमण शेष रहने पर भी सम्यक्त्व प्राप्ति हो जाएगी। किन्तु ऐसा मानना आगम विरुद्ध है, अतः काल को भी नियत मानना अनिवार्य है।

४. काल को नियत मानने में पुरुषार्थ व्यर्थ हो जाएगा - ऐसा मानना भी मिथ्या है, क्योंकि समय से पहले कार्य होने में पुरुषार्थ की सार्थकता नहीं अपितु समय पर कार्य होने में ही पुरुषार्थ की सार्थकता है, क्योंकि समय पर गेहूँ पकने से किसान का पुरुषार्थ व्यर्थ नहीं होता।

५. जिस द्रव्य की जो पर्याय जिस समय होनी है वह अवश्य होगी - ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टि सम्पत्ति में हर्ष और विपत्ति में विषाद नहीं करता, तथा सम्पत्ति पाने के लिए और विपत्ति को दूर करने के लिए देवी-देवताओं के आगे गिड़गिड़ाता भी नहीं है। इसप्रकार कार्तिकेयानुप्रेक्षा का उक्त कथन सार्वभौमिक सिद्ध होता है, तथा पुरुषार्थ की सार्थकता भी सिद्ध होती है।

६. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का भला बुरा नहीं कर सकता, तथा जो पर्याय जब जैसी जिस विधि से होनी है, वैसी ही होगी, उसे इन्द्र तो क्या जिनेन्द्र भी नहीं पलट सकते; तो फिर व्यन्तर आदि साधारण देवी-देवताओं की क्या सामर्थ्य है?

– इसी शाश्वत सत्य के आधार पर पराधीनता और दीनता नष्ट होती है।

७. यदि उक्त कथन को सार्वभौमिक सत्य न माना जाए तो निम्न प्रश्न खड़े होते हैं?

क्या असत्य के श्रद्धान से गृहीत मिथ्यात्व छूटेगा?
क्या कोई कार्य समय से पहले किया जा सकता है?

निश्चित समय स्वीकार किये बिना 'समय से पहले' का क्या अर्थ है? समय से पहले कार्य होने में पुरुषार्थ हो तो जो कार्य निश्चित समय पर होते हैं क्या वे बिना पुरुषार्थ के होते हैं?

८. उक्त प्रश्नों के सन्दर्भ में विचार किया जाए तो क्रमबद्ध परिणमन व्यवस्था शाश्वत सत्य सिद्ध होती है। अन्यथा सर्वज्ञता के निषेध का प्रसंग तो आता ही है।

९. क्रमबद्ध पर्याय की स्वीकृति में पुरुषार्थ की उपेक्षा कहीं नहीं है। सर्वत्र पुरुषार्थ को साथ में रखा गया है। जब सभी पर्याय निश्चित हैं तो पुरुषार्थ अनिश्चित कैसे होगा? वह तो स्वयं ही निश्चित हो गया।

१०. होनहार के प्रकरण में भी भैया भगवतीदास जी ने पुरुषार्थ की प्रेरणा दी है।

११. पाँचों समवायों में पुरुषार्थ का विशिष्ट स्थान है, क्योंकि उसी सन्दर्भ में प्रयत्न हो सकता है, अन्य समवायों में तो प्रयत्न करने का उपचार भी सम्भव नहीं है। क्रमबद्धपर्याय की स्वीकृति में सम्यक्-एकान्त है, अतः पुरुषार्थ का लोप नहीं हो सकता।

प्रश्न :–

७०. कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कथित क्रमबद्ध व्यवस्था शाश्वत सत्य नहीं है – इस मान्यता का तर्क सहित खण्डन कीजिए?

७१. क्रमबद्धपर्याय को स्वीकार करने पर पुरुषार्थ का लोप क्यों नहीं होता?

७२. काल को नियत न मानने पर क्या आपत्ति आएगी?

****

पुरुषार्थ एवं अन्य समवायों का सुमेल

गद्यांश २७

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी...............................कुछ भिन्न ही है।

(पृष्ठ ५२ एवं ५३)

विचार बिन्दु :–

१. आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने एक प्रश्न के माध्यम से पाँचों समवाय का प्रकरण उठाते हुए एक कारण में अनेक कारण मिलते हैं यह नियम बताकर पाँचों समवायों का सुमेल स्थापित किया है।

अ) ''तथा पुरुषार्थ से उद्यम करते हैं – यह आत्मा का कार्य है, इसलिए आत्मा को पुरुषार्थ से उद्यम करने का उपदेश देते हैं।'' इस कथन में उन्होंने पुरुषार्थ की मुख्यता स्थापित की है।

ब) वहाँ यह आत्मा जिस कारण से कार्य सिद्धि अवश्य हो उस कारणरूप उद्यम अवश्य करे, वहाँ तो अन्य कारण मिलते ही मिलते हैं और कार्य की सिद्धि होती ही होती है''। इस कथन में स्पष्ट किया गया है कि पुरुषार्थ करने वाले को अन्य समवाय भी मिलते हैं।

स) ''जो जीव पुरुषार्थ से जिनेश्वर के उपदेशानुसार मोक्ष का उपाय करता है उसके काललब्धि व होनहार भी हुए और कर्म के उपशमादि हुए हैं, तो वह ऐसा उपाय करता है......'' इस गद्यांश में भी पुरुषार्थी को अन्य समवाय मिलने की गारन्टी दी गई है।

पुरुषार्थ भी अन्य समवायों के अनुसार ही होता है। पंच समवायों में कोई परस्पर संघर्ष नहीं है, अपितु अद्‌भुत सुमेल है। इस सुमेल को निम्न प्रश्नोत्तरों से समझा जा सकता है।

प्रश्न :– सम्यग्दर्शन किसे होता है?

उत्तर :– सम्यग्दर्शन निकट भव्य जीव को होता है।

प्रश्न :– सम्यग्दर्शन कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर :– सात तत्त्वों का यथार्थ निर्णय करके त्रिकाली अखण्ड ज्ञायक स्वभाव का अवलम्बन करने पर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

प्रश्न :– यह जीव तत्त्व-निर्णय एवं स्वभाव सन्मुखता का पुरुषार्थ कब करेगा?

उत्तर :– जब इसकी श्रद्धा ज्ञान आदि गुणों की पर्याय में इस कार्यरूप परिणमन की योग्यता का स्वकाल आएगा, तभी ऐसा पुरुषार्थ करेगा।

प्रश्न :– क्या हम उपर्युक्त पुरुषार्थ अपनी इच्छा से अभी नहीं कर सकते?

उत्तर :– यदि कर सकते हैं तो कर लें? क्यों नहीं करते? इससे सिद्ध होता है कि इच्छा होना अलग बात है, और कार्य होना अलग बात है। पुरुषार्थ सम्बन्धी इच्छा, विकल्प आदि होने पर भी उनसे पुरुषार्थरूपी कार्य नहीं हो सकता। कार्य तो अपनी तत्समय की योग्यतानुसार होता है। उस समय इच्छा या विकल्प को निमित्त कहा जाता है। यदि स्वभाव सन्मुखता का पुरुषार्थ भी हमारी इच्छानुसार होता तो मुनि होने के बाद जो कार्य भरत चक्रवर्ती को अन्तमुहूर्त में हो गया, वही कार्य होने में मुनिराज ऋषभदेव को एक हजार वर्ष क्यों लगे?

प्रश्न :– काललब्धि आने पर यह जीव सम्यक्त्व का पुरुषार्थ ही करेगा, अन्य कार्यों का नहीं? यह कैसे माना जा सकता है?

उत्तर :– उस काल में सम्यक्त्वरूप कार्य की ही योग्यता है, अन्य कार्यों की नहीं, अतः वह जीव उस समय सम्यक्त्व का पुरुषार्थ ही करेगा। इसलिए उस काल को सम्यग्दर्शन की काललब्धि कहा जाता है।

प्रश्न :– सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में अनुकूल कौन होता है?

उत्तर :– सच्चे देव-शास्त्र-गुरु तथा दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम, क्षयोपशम या क्षय सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में अनुकूल कहा जाता है, इसलिए उन्हें सम्यक्त्व की उत्पत्ति में निमित्त कहते हैं।

उपर्युक्त प्रश्नोत्तर श्रृंखला से क्रमशः स्वभाव, पुरुषार्थ, काललब्धि, होनहार

और निमित्त का सुमेल स्पष्ट होता है कि विवक्षित कार्यरूप परिणमित होने की योग्यता वाला द्रव्य, उस कार्य के स्वकाल में उसी कार्य की उत्पत्ति करता है, तथा उस समय अनुकूल बाह्य-पदार्थों की उपस्थिति भी सहज होती है।

५. कार्य की उत्पत्ति में प्रत्येक समवाय एक साथ होते हैं, उसमें कोई मुख्य-गौण नहीं होता। किसी भी एक समवाय की मुख्यता से कथन हो सकता है। किसी जीव को सम्यक्त्व की उत्पत्ति कैसे हुई? इस प्रश्न का उत्तर प्रत्येक समवाय की मुख्यता से निम्नानुसार होगा।

स्वभाव :– आत्मा के श्रद्धा गुण में सम्यग्दर्शनरूप परिणमन करने की शक्ति से सम्यग्दर्शन हुआ।

पुरुषार्थ :– आत्मा के त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव की प्रतीति करने से सम्यग्दर्शन हुआ।

काललब्धि :– सम्यग्दर्शन होने का स्वकाल आया इसलिए सम्यग्दर्शन हुआ।

होनहार :– सम्यग्दर्शन होना था इसलिए सम्यग्दर्शन हुआ।

निमित्त :– दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम से सम्यग्दर्शन हुआ।

६. यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि पुरुषार्थ की मुख्यता से कथन आत्मा के मोक्षमार्गरूप कार्य के सन्दर्भ में ही किया जाता है। शेष पाँच द्रव्यों में भी पाँचों समवाय होते हैं, परन्तु उनके कार्यों में पुरुषार्थ की मुख्यता से कथन का कोई प्रयोजन नहीं होता। उनमें प्रायः निमित्त काललब्धि आदि की मुख्यता से कथन होता है। सभी द्रव्यों की कार्योत्पत्ति में पाँचों समवाय समानरूप से होते हैं।

७. मोक्षमार्गरूप कार्य के सन्दर्भ में किसी भी समवाय की मुख्यता से कथन हो, सभी कथनों से पुरुषार्थ की प्रेरणा मिलती है – इस तथ्य को निम्नानुसार स्पष्ट किया जा सकता है।

स्वभाव :– आत्मा का स्वभाव जानने से उसकी महिमा प्रगट होती है। तथा पर-पदार्थों की महिमा टूटती है, जिससे सम्यक् पुरुषार्थ की प्रेरणा

मिलती है।

पुरुषार्थ :– पुरुषार्थ का सच्चा स्वरूप समझने से तदनुसार प्रयत्न करने की प्रेरणा मिलती है।

काललब्धि :– प्रत्येक पर्याय अपने स्वकाल में होती है – ऐसा समझने से पर्यायों की कर्त्ताबुद्धि टूटकर दृष्टि स्वभाव–सन्मुख होती है।

होनहार :– होने योग्य कार्य होता ही है – ऐसा निर्णय करने से भी पर्याय की चिन्ता छोड़कर स्वभाव–सन्मुख होने की प्रेरणा मिलती है।

निमित्त :– निमित्त का सच्चा स्वरूप जानने से निमित्ताधीन दृष्टि छोड़कर स्वभाव–सन्मुख होने की प्रेरणा मिलती है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रत्येक समवाय का निर्णय पुरुषार्थ प्रेरक है, अतः मोक्षमार्ग में पुरुषार्थ की मुख्यता से कथन होना स्वाभाविक है।

प्रश्न :–

७३. *कार्योत्पत्ति में पाँचों समवायों का सुमेल किस प्रकार है, स्पष्ट कीजिये?*

७४. *मोक्षमार्ग में किस समवाय की मुख्यता से कथन होता है और क्यों?*

७५. *किसी कार्य की उत्पत्ति का कारण पाँचों समवायों की मुख्या से बताइये?*

७६. *प्रत्येक समवाय का स्वरूप समझने से कौन से पुरुषार्थ की प्रेरणा मिलती है और कैसे?*

****

क्रमबद्धपर्याय और पुरुषार्थ

गद्यांश २८

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय...विनम्र अनुरोध है।

(पृष्ठ ५४ से पृष्ठ ५७ पैरा नं. ४ तक)

विचार बिन्दु :–

१. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ग्रन्थ में आत्मा को पुरुष तथा आत्मानुभूति के प्रयत्न को पुरुषार्थ कहा है। जब तक पर–पदार्थों और पर्यायों में इच्छानुकूल

परिणमन कराने की मान्यता रहती है, तब तक आत्मानुभूति नहीं हो सकती, क्योंकि ऐसी मान्यता में दृष्टि स्वभाव सन्मुख नहीं होती, पर में ही रहती है। क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा से ऐसी मान्यता टूटकर अकर्त्ता ज्ञायक स्वभाव की दृष्टिपूर्वक सम्यग्दर्शन होता है।

२. दृष्टि का स्वभाव सन्मुख ढलना ही मुक्ति के मार्ग में अनन्त पुरुषार्थ है। क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा करने वाले को उक्त श्रद्धा के काल में आत्मोन्मुखी अनन्त पुरुषार्थ होने का और सम्यग्दर्शन होने का क्रम भी सहज होता है।

३. यह जगत् पर और पर्याय के कर्त्तृत्व के अहंकार से ग्रस्त है और इसमें ही पुरुषार्थ समझता है। इन विकल्पों से विराम लेकर आत्मा में स्थिरता रूप पुरुषार्थ को वह नहीं जानता।

४. जिन्हें क्रमबद्धपर्याय की स्वीकृति में पुरुषार्थ का लोप दिखता है, उन्हें विचार करना चाहिए कि सर्वज्ञ भगवान भी पर और पर्यायों में परिवर्तन के विकल्पों से रहित होकर अपने में ही लीन होते हुए भी अनन्त पुरुषार्थी हैं, तो फिर हम भी क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा करके सम्यक्–पुरुषार्थ प्रगट क्यों नहीं कर सकते?

५. पुरुषार्थ जीव द्रव्य की पर्याय है; अतः उसका कार्य जीव की पर्याय में होता है, पर में नहीं। अतः भगवान का अनन्त पुरुषार्थ निज में है, पर में नहीं। अपने को पर और पर्यायों का कर्त्ता मानने में अनन्त विपरीत पुरुषार्थ है, जिसका फल संसार–भ्रमण है; तथा अपने में लीन रहकर पर और पर्यायों को मात्र जानने में अनन्त सम्यक् पुरुषार्थ है, जिसका फल मुक्ति है।

६. अज्ञानी मानते हैं कि ''वस्तु का परिणमन केवलज्ञान के अनुसार मानने पर हम उसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकते; इसलिए उसमें पुरुषार्थ का लोप हो जाता है।'' परन्तु उनका ऐसा मानना मिथ्या है, क्योंकि पर में परिवर्तन करना आत्मा का पुरुषार्थ है ही नहीं। जिसने केवलज्ञान का तथा सर्वज्ञ का निर्णय किया है उसे अपने ज्ञान स्वभाव का निर्णय अवश्य होता है और यही सच्चा पुरुषार्थ है। केवलज्ञान का निर्णय करने वाले ज्ञान में ही अनन्त पुरुषार्थ प्रगट हो जाता है। जिसे क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा में पुरुषार्थहीनता दिखती है, उसे केवलज्ञान या

क्रमबद्धपर्याय का सच्चा निर्णय नहीं है, वह पुरुषार्थ का सच्चा स्वरूप भी नहीं जानता। वह पर-कर्तृत्व और पर्यायों के हेर-फेर को ही पुरुषार्थ समझ रहा है, जबकि ऐसा मानने पर पुरुषार्थ तो टूटना ही चाहिए। यदि वह सर्वज्ञता और पुरुषार्थ के सच्चे स्वरूप का निर्णय करे तो उसे पुरुषार्थ का निषेध होने की शंका नहीं रहेगी। अतः उसे सर्वज्ञता और पुरुषार्थ के सच्चे स्वरूप पर गंभीरता से विचार करके यथार्थ निर्णय करना चाहिए।

प्रश्न :-

७७. पुरुषार्थ किसे कहते हैं?

७८. क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा में पुरुषार्थ कैसे प्रगट होता है?

७९. क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा से पुरुषार्थ का लोप हो जाता है - इस मान्यता का खण्डन कीजिए?

८०. जिन्हें क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा में पुरुषार्थ का लोप दिखता है, उन्हें क्या विचार करना चाहिए?

****

सर्वज्ञता की श्रद्धा

गद्यांश २९

सर्वज्ञ को धर्म का मूल..................................श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है।

(पृष्ठ ५७ पैरा नं. ५ से पृष्ठ ६० पैरा नं. ५ तक)

विचार बिन्दु :-

१. सर्वज्ञ भगवान धर्म के मूल हैं, क्योंकि उनकी सच्ची श्रद्धा से ही सम्यग्दर्शन अर्थात् धर्म का प्रारम्भ होता है। सर्वज्ञ भगवान को द्रव्य-गुण-पर्याय से जाननेवाला अपने आत्मा को जानता है और आत्मा को जानने से उसका मोहक्षय अवश्य होता है; क्योंकि आत्मा को नहीं जानना ही मोह है, अतः आत्मा को जानना मोह के अभाव स्वरूप है।

२. सर्वज्ञ के द्रव्य-गुण को जानने से आत्मा का त्रैकालिक स्वरूप ज्ञात होता

है, तथा पर्याय को जानने से अपनी और उनकी पर्यायों का अन्तर ख्याल में आता है, जिससे रागादि विकारी भाव और अल्पज्ञता आत्मा का स्वरूप नहीं है - ऐसा निर्णय होने से उनसे भेदज्ञान होता है। इसप्रकार सर्वज्ञ के सच्चे स्वरूप को जानकर ही सर्वज्ञ बनने का सच्चा पुरुषार्थ प्रगट किया जा सकता है।

जिसप्रकार तीर्थंकर माँ के गर्भ में आने के पहले उनके स्वप्नों में आते हैं, उसीप्रकार सर्वज्ञता पर्याय में प्रगट होने के पहले समझ में आती है। समझ में आए बिना वह प्रगट नहीं हो सकती।

३. इस कलिकाल में कुछ जैन-धर्मानुयायी भी पक्ष-व्यामोह के कारण सर्वज्ञता में भी मीन-मेख निकालने लगे हैं। आचार्य समन्तभद्र ने डंके की चोट पर सर्वज्ञता सिद्ध की है, अतः वे कलिकाल सर्वज्ञ कहलाए, आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी ने भी इस युग में यही कार्य किया है।

४. सर्वज्ञता और क्रमबद्धपर्याय एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, क्योंकि सर्वज्ञता से क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि तथा क्रमबद्ध को मानने से सर्वज्ञता की सिद्धि होती है। इन दोनों की श्रद्धा ज्ञायक स्वभाव के सन्मुख होने से होती है तथा इनके निर्णय से ही ज्ञायक स्वभाव के सन्मुख हो सकते हैं। अतः क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा में ज्ञायक स्वभाव की सन्मुखता का अनन्त पुरुषार्थ समाहित है।

५. सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा जाता है और सर्वज्ञता की श्रद्धा बिना सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा नहीं हो सकती; क्योंकि सच्चे देव वीतरागी और सर्वज्ञ हैं, शास्त्र सर्वज्ञ की वाणी है और गुरु उनके बताए हुए मार्ग पर चलने वाले होते हैं।

प्रश्न :-

८१. सर्वज्ञ को जानने से मोह का क्षय किस प्रकार होता है?

८२. सर्वज्ञता, क्रमबद्धपर्याय और ज्ञायक स्वभाव की सन्मुखता में परस्पर सम्बन्ध स्थापित कीजिए?

८३. सर्वज्ञता की श्रद्धा बिना सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा क्यों नहीं होती?

****

सर्वज्ञता के निर्णय की अनिवार्यता

गद्यांश ३०

कुछ लोगों का कहना है.........................बुद्धि को व्यवस्थित करते हैं।

(पृष्ठ ६० पैरा नं. ६ से पृष्ठ ६४ पैरा नं. ६ तक)

विचार बिन्दु :–

१. कुछ लोग कहते हैं कि क्रमबद्धपर्याय सिद्ध करने के लिए सर्वज्ञता का सहारा क्यों लिया जाता है, उसे वस्तु स्वरूप के आधार से सिद्ध कीजिए?

प्रवचनसार गाथा ९९ से १०१ में त्रिलक्षण परिणाम पद्धति के प्रकरण में वस्तु-स्वरूप के अनुसार सर्वज्ञता सिद्ध की गई है; फिर भी सर्वज्ञता जैन दर्शन में सर्वमान्य है, अतः जिन्हें सर्वज्ञता की थोड़ी भी श्रद्धा है, उन्हें क्रमबद्धपर्याय समझने में सुविधा रहती है। साधारण बुद्धिवालों को भी सर्वज्ञता के आधार से यह सूक्ष्म विषय समझ में आ सकता है।

चौबीस तीर्थंकर, तिरेसठ शलाका पुरुष, ढाई द्वीप, पाँचों मेरु, नन्दीश्वर द्वीप, स्वर्ग-नरक आदि सभी कुछ हम सर्वज्ञ कथित आगम के आधार से ही मानते हैं, फिर क्रमबद्धपर्याय जैसे सूक्ष्म विषय के लिए सर्वज्ञता या सर्वज्ञ कथित आगम का सहारा क्यों छोड़ दिया जाये?

क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा के लिए न सही, देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा के लिए तो सर्वज्ञता का निर्णय करना ही पड़ेगा।

२. क्रमबद्धपर्याय का विरोध करने वाले स्वयं को देव-शास्त्र-गुरु के रक्षक और आगम का संरक्षक मानते हैं परन्तु वे यह नहीं सोचते कि सर्वज्ञता अर्थात् क्रमबद्धपर्याय का निर्णय किए बिना देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप नहीं समझा जा सकता, तथा आगम तो सर्वज्ञ की वाणी है, जिसमें निश्चित भविष्य की असंख्य घोषणायें भरी पड़ी हैं। आगम के आधार बिना करणानुयोग का भी एक भी विषय

सिद्ध नहीं किया जा सकता। अतः सर्वज्ञता का आधार छोड़ने का आग्रह करना उचित नहीं है।

३. न केवल क्रमबद्धपर्याय अपितु सभी सिद्धान्तों का प्रतिपादन आचार्यों ने सर्वज्ञता के आधार पर किया है, अतः सर्वज्ञता और आगम के आधार बिना किस-किस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया जाएगा?

४. देव-शास्त्र-गुरु को हमारी सुरक्षा की आवश्यकता नहीं है, वे तो सुरक्षित ही हैं। हमें भव-भ्रमण से अपनी सुरक्षा करना हो तो उनका सच्चा स्वरूप समझना होगा। कुन्दकुन्दाचार्य देव प्रवचनसार की ८०वीं गाथा में मोह का नाश करने के लिए अरहन्त भगवान को जानने की बात कहकर वे ८२वीं गाथा में कहते हैं – सभी अर्हन्तों ने इसी विधि का उपदेश दिया है – ऐसे अर्हन्तों को नमस्कार हो। इस गाथा की टीका में आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं :– ''अधिक प्रलाप से बस होओ, मेरी मति व्यवस्थित हो गई है।''

उक्त विवेचन से स्पष्ट है। आत्महित के लिए सर्वज्ञता और क्रमबद्धपर्याय का स्वरूप समझकर अपनी मति व्यवस्थित करना अनिवार्य है।

प्रश्न :–

८४. *क्रमबद्धपर्याय को सिद्ध करने के लिए सर्वज्ञता को आधार बनाना अनिवार्य क्यों है?*

८५. *क्रमबद्धपर्याय को विरोध करने वाले सर्वज्ञता के बारे में क्या भूल करते हैं?*

****

अव्यवस्थित मति और स्वचलित व्यवस्था

गद्यांश ३१

अरे भाई!..विराम लेता हूँ।

(पृष्ठ ६४ पैरा नं. ७ से पृष्ठ ६७ सम्पूर्ण)

विचार बिन्दु :–

१. यह जगत् तथा इसकी परिणमन व्यवस्था व्यवस्थित और स्वचलित है, परन्तु अज्ञानी को अव्यवस्थित नजर आती है और वह इसे व्यवस्थित करना चाहता है; इसकी ऐसी बुद्धि ही अव्यवस्थित मति है। जैसे – चलती रेल में बैठा व्यक्ति स्वयं को स्थिर तथा बाहर के पेड़-पौधों को दौड़ता हुआ समझता है, वैसे

अध्याय ३

क्रमबद्धपर्याय : कुछ प्रश्नोत्तर

''क्रमबद्ध पर्यायः एक अनुशीलन'' की चर्चा समाज में सघनरूप से चलने लगी, अतः इस सम्बन्ध में अनेक प्रश्न आने लगे। यद्यपि अनुशीलन खण्ड में इस विषय के सभी सम्भावित पहलुओं पर पर्याप्त चर्चा हो चुकी है, तथापि इन प्रश्नों पर भी विचार किया जा रहा है, ताकि विषय का सर्वाङ्गीण स्पष्टीकरण हो सके।

अनुशीलन खंड के निर्देशों में सम्पूर्ण निबंध में चर्चित विचार-बिन्दु और उनसे सम्बन्धित प्रश्न दिये गये थे, ताकि उन प्रश्नों के सन्दर्भ में विचार-विश्लेषण की क्षमता विकसित हो सके। यहाँ प्रश्नोत्तर खण्ड में प्रश्न में गर्भित आशय एवं उत्तर के प्रमुख विचार बिन्दुओं का संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

प्रश्न १

गर्भित आशय :- क्रमबद्धपर्याय के समर्थन में सर्वप्रथम आगम प्रमाण में श्री समयसार गाथा ३०८ से ३११ गाथा की टीका की पंक्तियाँ प्रस्तुत की गई हैं। परन्तु वहाँ तो मात्र जीव-अजीव की भिन्नता की बात कही गई है, उसमें क्रमबद्धपर्याय का पोषण कैसे होता है?

उत्तर :-

१. जीव और अजीव अपने-अपने क्रमनियमित परिणामों से उत्पन्न होते हुए..... इस वाक्यांश में परिणामों का विशेषण 'क्रमनियमित' कहा गया है।

२. प्रत्येक द्रव्य के परिणमन को निश्चित क्रम में अर्थात् पूर्ण व्यवस्थित और निश्चित बताकर जीव को अकर्त्ता सिद्ध किया गया है।

३. पर्यायों में परिवर्तन की भी एक मर्यादा है, और वह भी नियमित है, वे हमारी इच्छानुसार नहीं, बल्कि अपने निश्चित क्रमानुसार बदलती है।

४. यद्यपि जीव अपने परिणामों का कर्त्ता है, तथापि उनके करने का बोझा उसके माथे पर नहीं है, क्योंकि वह परिणमन भी सहज और नियमित क्रम में होता है। परिणमन को निश्चित बताकर द्रव्य-गुण का अधिकार कम नहीं किया गया है, अपितु बोझा हटाया गया है, क्योंकि वह अपने परिणामों का अधिकृत कर्त्ता-भोक्ता तो है ही।

५. द्रव्य और गुण के समान पर्याय भी सत् है, परन्तु परिणमनशील होने से अज्ञानी उसमें इच्छानुसार परिवर्तन करना चाहता है। पर्याय भी स्वकाल की सत् है, अतः उसमें कोई फेरफार करना सम्भव नहीं है - ऐसी श्रद्धा करने से उनमें फेरफार की बुद्धि नहीं रहेगी।

६. जो लोग पर्यायों के क्रम में परिवर्तन करना चाहते हैं, उन्हें विचार करना चाहिए कि अनादि-अनन्त प्रवाहक्रम में भूतकाल की पर्यायें तो उत्पन्न होकर नष्ट हो चुकीं, अतः उनमें परिवर्तन करने का प्रश्न ही नहीं उठता; तथा वर्तमान पर्यायें तो उत्पन्न हो ही गईं, उनका काल भी एक समय का है, अतः उन्हें उखाड़ फेंकना सम्भव नहीं है। वे उत्पन्न होने के असंख्य समय बाद हमारे ज्ञान में आती हैं, अतः जब तक हम उन्हें जानेंगे तब तक वे नष्ट हो चुकी होती हैं, अतः वर्तमान पर्यायों में भी फेर-फार सम्भव नहीं है। इसीप्रकार भविष्य की पर्यायें अभी उत्पन्न ही नहीं हुईं। अतः उन्हें बदलना सम्भव नहीं है।

यदि कोई यह कहे कि हम चुन-चुन कर अच्छी पर्यायें लायेंगे, तो निम्न आपत्तियाँ उपस्थित होंगी :-

अ) कौन सी पर्यायें अच्छी हैं और कौन सी बुरी? इसका निर्णय कौन करेगा?

ब) भविष्य में कौन सी पर्याय आएगी - यह तो हमें पता नहीं, फिर उसे रोककर दूसरी पर्याय उत्पन्न करने का प्रयत्न कैसे करेंगे? जो पर्याय होगी वह नहीं

होने वाली थी और आपने उसे उत्पन्न किया है, यह निर्णय कैसे होगा? जिस पर्याय को उत्पन्न करने का अभिमान आप कर रहे हैं, यदि यही पर्याय हुई है तो निश्चित ही वही होनी थी अन्यथा वह होती ही नहीं। उसका उत्पन्न होना ही उसका निश्चित स्वकाल सूचित करता है।

इसप्रकार भविष्य की पर्यायों में भी परिवर्तन करना सम्भव नहीं है। अतः यही स्वीकार करना श्रेष्ठ है कि प्रत्येक द्रव्य अपने क्रमनियमित परिणामों से उत्पन्न होता हुआ निजरूप ही रहता है, पररूप नहीं होता।

उक्त सन्दर्भ में निम्न शंका-समाधान भी ध्यान देने योग्य है।

शंका :- समयसार की उक्त गाथाओं की टीका में ''जीव क्रमनियमित ऐसे अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है'' - ऐसा क्यों कहा है। द्रव्य तो अनादि-अनन्त है, अतः वह कैसे उत्पन्न हो सकता है?

समाधान :- ''क्रमनियमित परिणाम में'' का अर्थ यह है कि पर्याय की अपेक्षा देखा जाए तो द्रव्य उत्पन्न होता है। अपने स्वकाल में उत्पन्न होनेवाली पर्यायरूप परिणमित होना ही द्रव्य का उसरूप में उत्पन्न होना है। अतः यह कथन पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा समझना चाहिए।

****

प्रश्न २ से ६

गर्भित आशय :- यदि कोई द्रव्य किसी को नहीं परिणमाता तो परिणमन कौन कर जाता है? यदि कभी वस्तु का परिणमन रुक जाये या कभी जल्दी-जल्दी होने लगे या कभी धीरे-धीरे होने लगे, तो इस गड़बड़ी को कौन दूर करेगा? द्रव्य में ऐसी कौन सी शक्तियाँ हैं जिनसे यह व्यवस्था व्यवस्थित रहती है?

उत्तर :-

१. ध्रुवता के समान परिणमन करना भी द्रव्य का नित्य स्वभाव है, अतः कभी भी परिणमन रुकने का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रत्येक पर्याय एक समय की ही

होती है, अतः जल्दी या देरी होने की कोई समस्या नहीं है।

२. प्रत्येक द्रव्य में निरन्तर अनन्त शक्तियाँ उल्लसित होती रहती हैं, जिनमें भाव, अभाव आदि छह शक्तियों के कारण द्रव्य की परिणमन-व्यवस्था व्यवस्थित रहती है। उनका स्वरूप निम्नानुसार है -

(I) **भावशक्ति :-** द्रव्य में प्रतिसमय उसकी निश्चित अवस्था अवश्य ही होती है।

(II) **अभाव शक्ति :-** वर्तमान पर्याय के अलावा कोई अवस्था उत्पन्न नहीं होती।

(III) **भावाभाव शक्ति :-** वर्तमान पर्याय का आगामी समय में नियम से अभाव होता है।

(IV) **अभाव-भाव शक्ति :-** आगामी समय में होने वाली पर्याय अपने समय में नियम से उत्पन्न होती है।

(V) **भावभाव शक्ति :-** जो पर्याय जिस समय होना है, वह उस समय अवश्य होगी।

(VI) **अभावाभाव शक्ति :-** जो पर्याय जिस समय नहीं होना है, वह उस समय नहीं होगी।

उक्त छह शक्तियों का समूह यह सुनिश्चित करता है कि जिस द्रव्य की जो पर्याय, जिस समय, अपने उपादान के अनुसार जिस विधि से होनी है, वह स्वयं नियम से उस समय वैसी ही होती है, उसमें पर की अपेक्षा रञ्चमात्र भी नहीं होती।

विशेष निर्देश :- उक्त शक्तियों के कार्य को तात्कालिक घटनाओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

****

प्रश्न ७

गर्भित आशय :- यदि हम अपनी पर्यायों के क्रम में भी परिवर्तन नहीं कर सकते तो हम उसके कर्त्ता भी नहीं रहेंगे? क्योंकि कर्त्ता होने का मतलब तो

यही है कि हम जो चाहें वह करें और जो न चाहें वह न करें।

उत्तर :–

१. हम अपनी पर्यायों के क्रम में परिवर्तन किये बिना भी उनके कर्त्ता हैं; क्योंकि द्रव्य की परिणमन शक्ति के कारण प्रत्येक पर्याय अपने स्वसमय में उत्पन्न होती है और द्रव्य उसरूप परिणमित होता है, इसलिए वह अपनी पर्यायों का कर्त्ता है।

२. द्रव्य अपनी पर्यायों का कर्त्ता है या नहीं – इस सम्बन्ध में जिनागम में निम्न दो अपेक्षाओं से कथन किया गया है।

अ) क्षणिक उपादान की अपेक्षा पर्याय तत्समय की योग्यतानुसार होती है; इसलिए पर्याय का कर्त्ता पर्याय स्वयं है, द्रव्य–गुण नहीं। इस कथन में सत्ता निरपेक्ष अनित्य शुद्ध पर्यायार्थिकनय घटित होता है। यह पर्याय की स्वतंत्रता की चरम परिणति है, जिससे सहज क्रमनियमित परिणमन सिद्ध होता है।

ब) त्रिकाली उपादान की अपेक्षा पर्याय का कर्त्ता उसका द्रव्य या गुण है, क्योंकि द्रव्य उसरूप परिणमन करता है। इस कथन में उत्पाद–व्यय सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय एवं सत्ता सापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय घटित होता है।

३. परिणमनशीलता द्रव्य का सहज स्वभाव है और वह पर से निरपेक्ष है। यदि द्रव्य का परिणमन एक समय के लिए भी बन्द हो जाए तो इसका अर्थ यह होगा कि द्रव्य का परिणमन स्वभाव नष्ट हो गया; तब स्वभाव नष्ट होने से स्वभाववान द्रव्य के भी नष्ट होने का प्रसंग आएगा। निरन्तर परिणमन करने में द्रव्य को कोई कठिनाई नहीं है, यही उसका जीवन है।

****

प्रश्न ८

गर्भित आशय :– यदि हम पर–पदार्थों का कुछ नहीं कर सकते तो हमारी स्वतन्त्रता क्या रही? हम तो कुछ कर ही नहीं सकते, अतः पराधीन

हो जायेंगे।

उत्तर :–

१. पर–पदार्थों का परिणमन करने का नाम स्वतन्त्रता नहीं है, अपितु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता – इस व्यवस्था का नाम स्वतन्त्रता है। प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतन्त्र है, अर्थात् हम पर–पदार्थों का परिणमन नहीं कर सकते – यह पर–द्रव्य की स्वतन्त्रता है। स्वतन्त्रता के नाम पर पर–पदार्थों को अपने आधीन करने की चेष्टा घोरतम अपराध है। किसी राज्य–व्यवस्था में कोई चोरी नहीं कर सकता, किसी की हत्या नहीं कर सकता, तो इसमें चोरों और हत्यारों को पराधीनता भले दिखे, परन्तु इसमें उस राज्य की सुव्यवस्था ही है, पराधीनता नहीं।

२. हमारा सुख–दुःख, जीवन–मरण, भला–बुरा सब कुछ हमारे आधीन है, उसमें किसी का कोई हस्तक्षेप नहीं है – ऐसी प्रतीति करने में हमें परम स्वतंत्रता का अनुभव होगा। अतः क्रमबद्धपर्याय में वस्तु की अनन्त स्वतंत्रता की घोषणा है।

****

प्रश्न ९ एवं १०

गर्भित आशय :– यदि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्यायों का कर्त्ता नहीं है तो ज्ञानी ऐसा क्यों कहते हैं कि ''मैंने भोजन किया, मैंने पूजन की, मैंने व्यापार किया ....'' इत्यादि। क्या वे भी ऐसा मानते हैं? यदि नहीं, तो उनकी मान्यता और कथन में अन्तर क्यों है?

उत्तर :–

१. ज्ञानी की मान्यता वस्तु–स्वरूप के अनुसार होती है, और वाणी लोक–व्यवहार के अनुसार निमित्त की मुख्यता से होती है। यह मेरा मकान है, यह मेरा पुत्र है, मैं अमुक व्यापार करता हूँ, मैं प्रवचन करता हूँ ...... आदि वचन–व्यवहार करते हुए भी वे मिथ्यादृष्टि नहीं होते, क्योंकि मिथ्यात्व मान्यता

का दोष है, वाणी का नहीं। पण्डित टोडरमलजी द्वारा रहस्यपूर्ण चिट्ठी में दिये गए मुनीम के उदाहरण से यह बात अच्छी तरह समझी जा सकती है।

२. आत्मख्याति के प्रारम्भ में आचार्य अमृतचन्द्र लिखते हैं यह टीका करने से मेरी परिणति परम विशुद्धि को प्राप्त हो। और अन्त में लिखते हैं इस टीका के बनाने में स्वरूपगुप्त अमृतचन्द्र का कुछ भी कार्य नहीं है। यही आशय पण्डित टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका की पीठिका और प्रशस्ति में व्यक्त किया है, इससे सिद्ध होता है कि ज्ञानी के वचन-व्यवहार और मान्यता में अन्तर होना छल-कपट का प्रतीक नहीं है; अपितु यह वस्तु स्थिति है। क्योंकि वचन-व्यवहार लोक के अनुसार ही सम्भव है, अन्यथा लौकिक व्यवहार चल नहीं सकता और लोक ज्ञानियों को पागल समझकर उनका तिरस्कार करेगा तथा उनके निमित्त से आत्महित नहीं कर सकेगा।

****

प्रश्न ११

गर्भित आशय :– तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय के अन्तिम सूत्र में लिखा है कि उपपाद जन्मवाले देव और नारकी, चरम शरीरी, और असंख्यात वर्ष की आयुवाले भोगभूमि के जीवों की आयु अपवर्तन रहित होती है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि कर्मभूमि के मनुष्य और तिर्यञ्चों की आयु का अपवर्तन होता है, अर्थात् उनकी अकालमृत्यु भी हो जाती है। यदि ऐसा है, तो सभी पर्यायें निश्चित क्रमानुसार होती हैं – यह नियम कहाँ रहा।

उत्तर :–

१. उक्त कथन आयुकर्म की उदीरणा की अपेक्षा से किया गया है; अर्थात् आयुकर्म की अपेक्षित स्थिति पूरी होने के पूर्व ही मरण हो जाये, तो उसे अकाल मृत्यु कहा जाता है। उस जीव की आयु कर्म के परमाणु बाँधी गई स्थिति के इतने समय पूर्व इस निमित्त की उपस्थिति में खिर जायेंगे और इसकी

मृत्यु हो जाएगी – यह बात भी केवली के ज्ञान में तो झलकी है, अतः वह मृत्यु भी अपने स्वकाल में हुई है, अकाल में नहीं।

२. किसी व्यक्ति की मृत्यु हत्या एक्सीडेन्ट, विषभक्षण आदि से होने पर लोग उसे अकाल मृत्यु कहते हैं। इस सन्दर्भ में निम्न तथ्यों पर विचार किया जाये :-

अ) यह बात केवली भगवान जानते थे या नहीं?

ब) एक्सीडेंट में इसी व्यक्ति की मृत्यु क्यों हुई, शेष लोगों की क्यों नहीं?

स) उसकी मृत्यु उसी समय क्यों हुई, आगे पीछे क्यों नहीं?

...तो स्पष्ट हो जाएगा कि उस घटना का भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव निश्चित था; अतः कथित अकाल-मृत्यु भी अपने स्वकाल में हुई है, इसलिये अकाल मृत्यु से क्रमबद्धपर्याय का नियम भंग नहीं होता है।

३. पाठ्यपुस्तक में क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी कृत 'शान्ति पथप्रदर्शक' के आधार पर यह बात विशेष रूप से स्पष्ट की गई है।

****

प्रश्न १२

गर्भित आशय :– यदि यह कहा जाये कि केवलज्ञान के अनुसार अकाल मृत्यु भी स्वकाल में हुई है, तो इसका अर्थ यह भी तो निकलता है कि किसी अपेक्षा से वह अकाल मृत्यु भी है? फिर अकाल मृत्यु का निषेध कैसे किया जा सकता है?

उत्तर :–

१. आयुकर्म के अपकर्षण, उदीरणा आदि से होनेवाले मरण की अपेक्षा ऐसा भी कहा जाता है, परन्तु यदि यह विचार किया जाये कि ऐसा होना केवली के ज्ञान में जाना जाता था या नहीं? तो स्पष्ट जायेगा कि अकाल मृत्यु कही जाने पर भी घटना पूर्व निश्चित ही थी, अतः वह भी स्वकाल मृत्यु है।

२. घड़े में से पानी टपकने का अथवा कैदी के उदाहरण से यह बात स्पष्ट है

कि क्षयोपशम ज्ञान की अपेक्षा जिसे अकालमृत्यु कहा जा रहा है, केवलज्ञान की अपेक्षा वह स्वकाल मृत्यु ही है।

३. अकाल शब्द का 'काल से पहले' – यह अर्थ नहीं है। अकाल शब्द का अर्थ है 'काल से भिन्न' अर्थात् काल से भिन्न अन्य समवाय। जब काल की मुख्यता से कथन हो तब कालमृत्यु कही जाती है; और विषभक्षण आदि निमित्त की मुख्यता से कथन हो तब अकालमृत्यु कही जाती है। अतः अकालमृत्यु कहने पर भी क्रमबद्धपर्याय के शाश्वत नियम पर कोई अन्तर नहीं पड़ता।

****

प्रश्न १३

गर्भित आशय :– केवली भगवान को भविष्य में होने वाली पर्यायों का ज्ञान है, अतः उनकी अपेक्षा पर्यायें क्रमबद्ध हैं तथा छद्मस्थ को भविष्य की पर्यायों का ज्ञान नहीं है, अतः उसकी अपेक्षा पर्यायें अक्रमबद्ध हैं। इसप्रकार पर्यायों को कथञ्चित् अक्रमबद्ध मानने में क्या आपत्ति है, ऐसा मानने से अनेकान्त भी सिद्ध हो जाता है।

उत्तर :–

१. हमारे मानने से वस्तु-स्वरूप दो प्रकार का नहीं हो जायेगा, वह तो जैसा है, वैसा ही है; और हमें भी उसे वैसा ही समझना है, जैसा कि वह है; अपनी मान्यता उस पर नहीं लादना है। वस्तुस्वरूप का निर्णय केवली के ज्ञानानुसार होगा, तभी सच्चा निर्णय होगा। अज्ञान के अनुसार वस्तु का सच्चा निर्णय नहीं हो सकता।

२. हमें भविष्य की पर्यायों का ज्ञान नहीं है, इससे हमारी अज्ञानता सिद्ध होती है, पर्यायों की अनिश्चितता नहीं। यदि किसी को रविवार आदि सातों दिनों के क्रम का ज्ञान नहीं है, तो इससे उनका क्रम भंग नहीं हो जाएगा। अतः

पर्यायों को क्रमबद्ध भी मानना और अक्रमबद्ध भी मानना–तो उभयाभास है, अनेकान्त नहीं।

३. केवलज्ञान किसी कार्य का ज्ञापक अर्थात् ज्ञान कराने वाला मात्र है, कारक नहीं। केवलज्ञान ने जाना है, इसलिए वस्तु को उसरूप परिणमित होना पड़ेगा – ऐसा नहीं है। वस्तु के परिणमन को जानने की योग्यता केवलज्ञान में है, अतः वह सहज जानता मात्र है।

४. क्रमबद्धपर्याय में निम्न अपेक्षाओं से अनेकान्त घटित होता है।

अ) पर्यायें क्रमबद्ध ही होती हैं, अक्रमबद्ध नहीं, यह विधि-निषेधरूप अनेकान्त है।

ब) गुण अर्थात् सहवर्ती पर्यायें अक्रमरूप (युगपत्) हैं तथा क्रमवर्ती पर्यायें क्रमबद्ध हैं – यह गुण-पर्यायात्मक वस्तु में घटित होनेवाला अनेकान्त है।

स) प्रत्येक गुण प्रति समय परिणमता है, अतः अनन्त पर्यायें एक साथ होती हैं, तथा एक गुण की त्रिकालवर्ती पर्यायें अपने निश्चित क्रमानुसार होती हैं – ऐसा पर्याय सम्बन्धी अनेकान्त है।

गति, इन्द्रिय, काय, योग आदि चौदह मार्गणायें एक साथ होती है तथा मिथ्यात्व सम्यक्त्व आदि गुणस्थान यथायोग्य क्रम से होते हैं।

५. 'क्रम' और 'अक्रम' शब्द के दो अर्थ होते हैं।

(१) क्रम अर्थात् एक के बाद एक और अक्रम अर्थात् युगपत् एक साथ

(२) क्रम अर्थात् निश्चित क्रमानुसार इसके बाद यही, अन्य नहीं, और अक्रम अर्थात् सब कुछ अनिश्चित, अव्यवस्थित। जब पर्यायों में अक्रमपना बताया जाये, तब वह प्रथम अर्थ के अनुसार होता है, द्वितीय अर्थ के अनुसार नहीं, तथा इस अनुशीलन में द्वितीय अर्थ के अनुसार क्रमबद्धपर्याय पर विचार किया गया है। तदनुसार पर्यायें एक निश्चित क्रमानुसार ही होती हैं जो कि स्याद्वादी जैनदर्शन को मान्य है।

६. द्रव्य-पर्यायात्मक वस्तु में सम्यक्-अनेकान्त तथा उसके द्रव्य या पर्याय अंश में सम्यक्-एकान्त घटित होता है। क्रमबद्धपर्याय में पर्यायों की चर्चा है, अतः पर्यायें क्रमबद्ध ही होती है, और गुण भी वस्तु के अंश हैं, अतः वे अक्रमरूप ही हैं - ऐसा सम्यक् एकान्त घटित होता है।

गुण-पर्यायात्मक वस्तु में अक्रमवर्ती गुण और क्रमवर्ती पर्याय - ऐसा अनेकान्त घटित होता है, अतः क्रमाक्रमरूप अनेकान्त भी गुण-पर्यायात्मक वस्तु में घटित करना चाहिये, अकेली पर्याय में नहीं।

****

प्रश्न १४

गर्भित आशय :- अकालमृत्यु के सन्दर्भ में ऐसा अनेकान्त घटित किया गया था कि उदीरणा या अपकर्षण से होने वाले मरण की अपेक्षा अकालमृत्यु है, तथा केवलज्ञान की अपेक्षा स्वकाल मृत्यु है; तो फिर क्रमबद्धपर्याय में ऐसा अनेकान्त घटित क्यों नहीं हो सकता कि केवलज्ञान की अपेक्षा पर्यायें क्रमबद्ध हैं और छद्मस्थ की अपेक्षा अक्रमबद्ध हैं?

उत्तर :-

१. अकालमृत्यु के सन्दर्भ में मात्र यह कहा गया था कि उदीरणा या अपकर्षण से होने वाले मरण की अपेक्षा अकालमृत्यु कही जाती है, हुई तो वह स्वकाल में ही है। वह अपने स्वकाल में न होकर आगे-पीछे हुई है - ऐसा उसका आशय नहीं है।

२. क्रमबद्धपर्याय के सन्दर्भ में आइन्सटीन का निम्न कथन विचारणीय है :-

"□□□□□□ □□ □□□ □□□□□□, □□□□ □□□□□□□□ □□□□□□□ □□□ □□□ □□□□ □□ □□□ □□□□□ □□□□□□□□" घटनायें घटती नहीं, वे पहले से ही विद्यमान हैं तथा कालचक्र पर देखी जाती हैं।

****

प्रश्न १५, १६ एवं १७

गर्भित आशय :- प्रवचनसार में अकालनय की चर्चा आती है; जिससे यह सिद्ध होता है कि कृत्रिम गर्मी से पकाये गए आम की भाँति कार्य की सिद्धि अकाल में भी होती है, अतः अकालनय और क्रमबद्धपर्याय में परस्पर विरोध आता है।

उत्तर :-

१. जिसप्रकार अकालमृत्यु के प्रकरण में अकाल शब्द का अर्थ काल से भिन्न अन्य समवाय है, उसीप्रकार अकालनय में अकाल शब्द का अर्थ काल से भिन्न अन्य समवाय है। 'कृत्रिम गर्मी से आम पकाया गया', इसमें स्वकाल का निषेध नहीं है, अर्थात् वह समय से पूर्व पक गया - ऐसा नहीं है, अपितु यह निमित्त की मुख्यता से कथन है। यदि कृत्रिम गर्मी से ही आम पकते हों तो सभी आम एक साथ क्यों नहीं पक जाते? तथा एक आम को पकने में एक निश्चित समय क्यों लगता है? इससे सिद्ध हुआ कि कृत्रिम गर्मी से पकने वाला आम भी अपने स्वकाल में ही पकता है, समय से पहले नहीं।

जिसप्रकार जीव से भिन्न पुद्‌गलादि पाँच द्रव्यों को अजीव कहा जाता है उसी प्रकार काल से भिन्न निमित्तादि अन्य चार समवायों को अकाल कहा जाता है। लोक में भी जैन से भिन्न अन्य धर्मावलम्बियों को अजैन कहा जाता है। जो आम, जिस जगह, कृत्रिम गर्मी से जितने दिन में पकना है वही आम उसी जगह, कृत्रिम गर्मी से ही, उतने ही दिन में पकेगा - यह नियम उसकी परिणमन व्यवस्था में शामिल है। अतः अकालनय और क्रमबद्धपर्याय में कोई विरोध नहीं है।

यह हो सकता है कि अकाल का यह अर्थ हमारी धारणा से विपरीत होने से हमें नया लगता हो, परन्तु हमें इस पर गम्भीरता से विचार करके वस्तु व्यवस्था का निर्णय करना चाहिए।

****

प्रश्न १८

गर्भित आशय :- भविष्य को सर्वथा निश्चित मानने पर भावी दुर्घटनाओं का पता चलने पर जगत भयभीत हो जायेगा और उन्हें टालने का प्रयत्न असफल जानकर असहाय और निराश हो जाएगा, जिससे उसका मनोबल टूट जायेगा,

अतः भले ही पर्यायों का क्रम निश्चित हो, परन्तु लौकिक दृष्टि से उसे स्वीकार न करने में ही हित है।

उत्तर :–

१. भय और निराशा की उत्पत्ति अज्ञान और कषाय से होती है, वस्तु स्वरूप समझने से नहीं, कवि बुधजनजी ने अपनी आध्यात्मिक रचना में क्रमबद्धपर्याय के निर्णय से निर्भयता उत्पन्न होने की घोषणा की है। उनकी निर्भयता का आधार सत्य की स्वीकृति है, पर–पदार्थों में परिवर्तन की कल्पना नहीं।

२. यदि ज्ञानी और अज्ञानी दोनों पर कोई संकट आ जाये तो ज्ञानी धैर्यधारण करके निर्भय रहेगा और अज्ञानी भयाक्रान्त हो जायेगा। यदि दोनों भगवान का स्मरण करने लगें तो ज्ञानी तो अशुभ से बचकर धैर्यधारण करने के अभिप्राय से भगवान का स्मरण करेगा और अज्ञानी इस अभिप्राय से भगवान को याद करेगा कि कोई देवता आकर संकट दूर कर देंगे। इस अभिप्राय से वह मिथ्यात्व का पोषण ही करेगा।

३. यदि ज्ञानी को थोड़ी बहुत आकुलता भी होती दिखे तो यह उसकी श्रद्धा का दोष नहीं है, अपितु चरित्र की कमजोरी है, क्योंकि परिस्थितियों में परिवर्तन करने का अभिप्राय न होते हुए भी वह स्वरूप में स्थिर नहीं हो पा रहा है।

४. झूठी आशा बनाये रखने के लिए सत्य को स्वीकार न करना महानतम अपराध है। जब तक आशा है तब तक दुःख ही है। आचार्य गुणभद्र ने कहा है कि प्रत्येक प्राणी का आशारूपी गड्ढ़ा इतना गहरा है कि उसमें सारा विश्व भी अणु जैसा है, अर्थात् नहीं के बराबर हैं। अतः उसकी पूर्ति सम्भव न होने से आशा करना ही व्यर्थ है। आशा और निराशा दोनों दुःखरूप हैं, आशा के अभावरूप अनाशा ही सुखरूप है।

५. संसार के कार्यों में निरुत्साहित होना ही श्रेष्ठ है। जो संसार में निरुत्साहित होगा, वह मोक्षमार्ग में उत्साहित होगा। जिसका मनोबल टूटेगा, उसका आत्मबल जागेगा। अतः क्रमबद्धपर्याय को स्वीकार करने में ही सच्चा हित है। यह बात हमारे हित के लिए ही कही जा रही है।

****

प्रश्न १९

गर्भित आशय :– क्रमबद्धपर्याय हमारी समझ में जब आना होगी तभी आयेगी, उससे पहले या बाद में नहीं। यह तो आप भी मानते हैं, तो हमें समझाने के विकल्प से आप व्यर्थ में क्यों परेशान हो रहे हैं? जब हमारी समझ में आना होगा, तब आ जायेगा और नहीं आना होगा तो नहीं आयेगा। अतः आप जबर्दस्ती समझाने की आकुलता क्यों कर रहे हैं?

उत्तर :–

१. हमारे प्रति आपकी सहानुभूति तो ठीक है, परन्तु हम आपको समझाने के लिए परेशान हो रहे हैं – यह बात नहीं है। हम तो अपने राग के कारण परेशान हो रहे हैं। हमारी वर्तमान भूमिका में न चाहते हुये यह राग आये बिना नहीं रहता।

२. अज्ञानियों को समझाने की करुणारूप शुभराग तो वीतरागी भावलिंगी मुनिराजों को भी आये बिना नहीं रहता, अन्यथा वे परमागमों की रचना क्यों करते? आकुलतास्वरूप होते हुये भी हमें यह राग आये बिना नहीं रहता कि हमने जिस सत्य को समझने से अपूर्व शांति प्राप्त की है, जगत् भी उस सत्य को समझकर अपूर्व शान्ति का वेदन करे।

****

प्रश्न २०

गर्भित आशय :– आपकी ऐसी उत्कृष्ट भावना होने पर भी यदि कोई आपकी बात न माने तो आप क्या करेंगे?

उत्तर :–

१. हम क्या कर सकते हैं? किसी को जबर्दस्ती तो समझा नहीं सकते। जगत् का अज्ञान देखकर करुणा आती है, अतः जैसा वस्तु–स्वरूप जाना है, वैसा बोलने लगते हैं, लिखने लगते हैं। जिनकी भली होनहार होती है वे सुनते हैं, समझते हैं तथा स्वीकार करके सुखी होते हैं, और जो नहीं सुनते या समझते, उनकी होनहार विचार करके हम भी मध्यस्थ भाव धारण करते हैं। यही भाव पण्डित प्रवर टोडरमलजी ने भी व्यक्त किया है।

अध्याय ४

क्रमबद्धपर्याय : महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

यद्यपि विगत तीन अध्यायों में क्रमबद्धपर्याय पुस्तक के अनुशीलन एवं प्रश्नोत्तर खण्ड में समागत प्रमुख विचार-बिन्दुओं की चर्चा की गई है, एवं उनसे सम्बन्धित संक्षिप्त प्रश्न भी दिए गए हैं; तथापि ८-१० दिन के शिविर में इस महत्वपूर्ण विषय को पढ़ाने के उद्देश्य से यहाँ मूल विषय से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर दिए जा रहे हैं। अतः प्रवचनकारों एवं अध्यापक बन्धुओं से सानुरोध आग्रह है कि इन प्रश्नोत्तरों के आधार से विषय का स्पष्टीकरण करते हुए इन्हें छात्रों को हृदयंगम कराने का प्रयास करें तथा इन प्रश्नोत्तरों को कन्ठस्थ करने की प्रेरणा दें।

प्रश्न १. क्रमबद्धपर्याय क्या है? द्रव्य/गुण/पर्याय

उत्तर :- क्रमबद्धपर्याय किसी एक द्रव्य या गुण या पर्याय का नाम नहीं, अपितु समस्त द्रव्यों और गुणों के परिणमन की सुव्यवस्थित व्यवस्था अर्थात् वस्तु के परिणमन की व्यवस्था है।

प्रश्न २. क्रमबद्धपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर :- ''जिस द्रव्य की, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जो पर्याय जिस निमित्त की उपस्थिति में, जिस पुरुषार्थ पूर्वक, जैसी होनी है; उसी द्रव्य की, उसी क्षेत्र में, उसी काल में, वही पर्याय, उसी निमित्त की उपस्थिति में, उसी पुरुषार्थपूर्वक, वैसी ही होगी, अन्यथा नहीं। वस्तु के परिणमन की इस व्यवस्थित व्यवस्था को क्रमबद्धपर्याय कहते हैं।

प्रश्न ३. व्यवस्थित और अव्यवस्थित से क्या आशय है?

उत्तर :- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का परस्पर सुमेल होना व्यवस्थित है, और सुमेल न होना अव्यवस्थित है। जैसे - किसी विद्यार्थी के कमरे में, कपड़े हेंगर पर टंगे हों, पुस्तकें अलमारी में हों तथा अन्य सभी वस्तुएँ यथा-स्थान हों तो उसका कमरा व्यवस्थित कहा जाएगा, और यदि पुस्तकें पलंग पर हों, कपड़े कुर्सी पर टंगे हों, अन्य वस्तुएँ भी यहाँ-वहाँ बिखरी पड़ी हों, तो उसका कमरा अव्यवस्थित कहा जाएगा।

इसीप्रकार पढ़ने के समय खेलना, खेलने के समय पढ़ना, पूजन के समय स्वाध्याय तथा स्वाध्याय के समय पूजन आदि कार्य अव्यवस्थित कहे जायेंगे। निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि सभी काम उचित समय पर उचित व्यक्ति के द्वारा उचित स्थान पर उचित विधि से करना व्यवस्थित कहा जाएगा और इससे विपरीत होने पर अव्यवस्थित कहा जाएगा।

प्रश्न ४. क्रमबद्धपर्याय की चर्चा करने की आवश्यकता क्यों पड़ती है?

उत्तर :- प्रत्येक वस्तु सत् अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप है। अतः परिणमन करना वस्तु का सहज स्वभाव है। वस्तु में प्रतिसमय नई-नई पर्यायें उत्पन्न होती हैं, पूर्व पर्यायों का व्यय होता है, तथा इस प्रक्रिया में वस्तु शाश्वत ध्रुवरूप रहती है।

उपर्युक्त परिणमन-स्वभाव के सन्दर्भ में यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि वस्तु कब, किसरूप में परिणमित होगी - इसका कोई सुनिश्चित नियम है या हम जब जैसा चाहें वैसा परिणमन कर सकते हैं? इसी प्रश्न का उत्तर क्रमबद्धपर्याय के सिद्धान्त के माध्यम से दिया जाता है।

प्रश्न ५. वस्तु के परिणमन की प्रमुख विशेषतायें बताइये?

उत्तर :- प्रत्येक पदार्थ का परिणमन, क्रमशः, नियमित, व्यवस्थित और स्वाधीन होता है। इन विशेषताओं का संक्षिप्त भाव नियमानुसार है :-

१. क्रमश :- एक के बाद एक अर्थात् प्रत्येक गुण की त्रिकालवर्ती पर्यायें अपने-अपने स्वकाल में एक के बाद एक होती है।

२. नियमित :– उन पर्यायों का क्रम नियमित अर्थात् सुनिश्चित है, अर्थात् किस समय कौन सी पर्याय होगी – यह सुनिश्चित है। परिणमन की यही विशेषता क्रमबद्धपर्याय कहलाती है।

३. व्यवस्थित :– वस्तु के परिणमन का क्रम नियमित होने के साथ-साथ व्यवस्थित भी होता है, अर्थात् द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के सुमेल पूर्वक होता है। बीज में से अंकुर, पौधा, शाखायें, पत्ते, फूल और फल क्रमशः इसी क्रम से निकलते हैं। गेहूँ से आटा, रोटी आदि पर्यायें निश्चित क्रमानुसार होती हैं। यही नियमितक्रम का व्यवस्थितपना है।

किसी सभा में अतिथियों का स्वागत सुनिश्चित और व्यवस्थित क्रम से होता है, अर्थात् अध्यक्ष, मुख्य-अतिथि, उद्‌घाटनकर्त्ता आदि का क्रम व्यवस्थित होता है। किस अतिथि का स्वागत किसके द्वारा कराया जाए – इसका क्रम भी एक व्यवस्थित नियमानुसार होता है।

४. स्वाधीन :– वस्तु की पर्यायें उसकी तत्समय की योग्यतानुसार स्वयं होती हैं, किसी अन्य द्रव्य के या हमारी इच्छा के या किसी ईश्वर की इच्छा के आधीन नहीं होतीं; यही वस्तु की स्वाधीनता है।

प्रश्न ६. क्रमबद्धपर्याय शब्द के प्रत्येक पद का अर्थ बताइये?

उत्तर :– क्रम = एक के बाद एक, एक साथ नहीं। बद्ध = नियमित अर्थात् निश्चित्, जिस समय जो पर्याय होना है वही होगी, दूसरी नहीं। पर्याय = द्रव्यों या गुणों का परिणमन।

प्रश्न ७. सिद्ध कीजिए कि अव्यवस्थित दिखने वाला जगत भी व्यवस्थित है?

उत्तर :– जगत् की जो घटनायें अपने प्राकृतिक नियमानुसार होती हैं, वे हमें व्यवस्थित दिखाई देती है। जैसे – सर्दी, गर्मी, बरसात, आदि समय पर होना; मौसम के अनुसार फल, अनाज आदि समय पर होना – इत्यादि। परन्तु जो घटनायें हमारी धारणा के विपरीत समय पर होती हैं, वे हमें अव्यवस्थित लगती

हैं। जैसे – गर्मियों में बरसात होना, सर्दियों में आम पकना, १० वर्ष के बालक को दाढ़ी-मूंछ में बाल आ जाना; बस, ट्रेन या प्लेन दुर्घटनाग्रस्त हो जाना, आग लग जाना, भूकम्प आ जाना – इत्यादि।

जिसप्रकार नाटक के मञ्च पर अव्यवस्थित दिखनेवाली गरीब की झोपड़ी अव्यवस्थित दिखने पर भी पूर्वनियोजित और व्यवस्थित है; उसी प्रकार उपर्युक्त घटनायें भी पूर्व निश्चित और व्यवस्थित हैं, क्योंकि वे सर्वज्ञ के ज्ञान में पहले से ही झलक रही हैं, तथा अपने परिणमन के नियमित क्रमानुसार हो रही है। हमारी धारणा के अनुकूल न होने से वे हमें अव्यवस्थित लगती हैं, परन्तु वस्तु की परिणमन व्यवस्था में वे सब व्यवस्थित ही हैं।

प्रश्न ८. क्रमबद्धपर्याय के पोषक कुछ आगम-प्रमाणों का उल्लेख कीजिए?

उत्तर :– पाठ्य-पुस्तक में दिए गए आगम-प्रमाण निम्नानुसार हैं :-

१. समयसार गाथा ३०८-३११ की अमृतचन्द्राचार्यकृत टीका।
२. कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ३२१-३२२-३२३।
३. आचार्य रविषेणकृत पद्मपुराण, सर्ग-११० श्लोक ४०
४. अध्यात्मपद संग्रह : भैया भगवतीदासकृत भजन, पृष्ठ ८
५. अध्यात्मपद संग्रह : कविवर बुधजनकृत भजन, पृष्ठ ७९
६. पण्डित जयचन्द्रजी छाबड़ा कृत मोक्ष पाहुड गाथा ८६ का भावार्थ
७. पण्डित सदासुखदासजी कासलीवालकृत रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका : श्लोक १३७ का भावार्थ।

प्रश्न ९. सिद्ध कीजिए कि प्रत्येक पदार्थ का परिणमन पूर्वनिश्चित क्रमानुसार ही होता है?

उत्तर :– प्रत्येक द्रव्य के अनन्तगुणों और उनकी त्रिकालवर्ती पर्यायों को सर्वज्ञ भगवान प्रत्यक्ष जानते हैं तथा जैसा भगवान जानते हैं वैसा ही वस्तु का परिणमन होता है। इसप्रकार वस्तु का परिणमन सर्वज्ञ के ज्ञान में पहले से ही ज्ञात होने से यह सिद्ध होता है कि वस्तु का परिणमन पूर्व निश्चित क्रमानुसार ही होता

है। यदि वस्तु का परिणमन केवलज्ञान में जाने गए क्रमानुसार न हो तो केवलज्ञान में अप्रमाणिकता का प्रसंग आएगा, जो किसी को भी इष्ट नहीं है। सर्वज्ञ भगवान वस्तु की त्रिकालवर्ती पर्यायों को जानते हैं, इससे वह स्वयं सिद्ध हो जाता है कि वस्तु का परिणमन निश्चित है। यदि वस्तु की त्रिकालवर्ती पर्यायों का क्रम निश्चित न होता तो उन्हें सर्वज्ञ भगवान कैसे जानते? फिर केवलज्ञान का क्या स्वरूप होगा? कोई न कोई पर्याय तो होगी – क्या ऐसा अनिश्चयात्मक होगा? यदि ऐसा हो तो छद्मस्थ के ज्ञान में और केवलज्ञान में क्या अन्तर रह जाएगा? यदि इन प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार किया जाए तो सहज समझ में आ जाएगा कि सर्वज्ञ द्वारा वस्तु की त्रिकालवर्ती पर्यायों का जानना ही उन पर्यायों की निश्चितता को बताता है।

लोक में भी किसी कार्यक्रम की घोषणा तभी की जाती है, जबकि वह निश्चित कर लिया गया हो। न केवल वह कार्य, अपितु उसका समय, स्थान, विधि, पूर्व-प्रक्रिया, उससे सम्बन्धित कार्यकर्त्ता आदि निश्चित होने पर ही उसकी घोषणा की जाती है। कल्पना कीजिए कि किसी की शादी का निमंत्रण दिया जाए; परन्तु कब, कहाँ, किससे होगी – यह पूछने पर यह कहा जाए कि कभी न कभी, कहीं न कहीं, किसी न किसी से होगी; तो उस घोषणा को लोक में कौन स्वीकार करेगा? अतः यह सिद्ध होता है कि किसी भी घटना की पूर्व घोषणा या पूर्व ज्ञान उसके निश्चित होने को बताता है।

प्रश्न १०. यदि केवलज्ञान द्वारा ज्ञात होने से वस्तु का परिणमन निश्चित माना जाए तो छद्मस्थ द्वारा ज्ञात न होने से उसे अनिश्चित क्यों न माना जाए?

उत्तर :– छद्मस्थ वस्तु की त्रिकालवर्ती पर्यायों को नहीं जानता, इससे उसका अज्ञान सिद्ध होता है, वस्तु के परिणमन की अनिश्चितता नहीं। लोक में भी किसी व्यक्ति से पूछा जाए कि अमुक ट्रेन कब आएगी? तो वह यही कहेगा कि मुझे पता नहीं हैं आप रेलवे के पूछताछ कार्यालय से पूछ लो। 'मुझे पता नहीं' कहकर वह अपने अज्ञान को तथा 'पूछताछ कार्यालय से पूछ लो' कहकर उसके निश्चितपने को स्वीकार करता है।

प्रश्न ११. क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि में सर्वज्ञता का आधार क्यों लिया जाता है?

उत्तर :– जिस प्रकार धुँए से अग्नि का ज्ञान होता है, क्योंकि धुएँ की अग्नि से अन्यथा-अनुपपत्ति है, अर्थात् धुआँ अग्नि के बिना नहीं होता, अतः उसे अग्नि का ज्ञापक-हेतु कहा जाता है; उसीप्रकार सर्वज्ञता की वस्तु के सुनिश्चित परिणमन से अन्यथा-अनुपपति है, अर्थात् परिणमन-व्यवस्था सुनिश्चित हुए बिना सर्वज्ञ उसे नहीं जान सकते। सर्वज्ञ के जाने हुए क्रमानुसार ही वस्तु परिणमित होती है। तभी तो यह कहा जा सकता है कि वह परिणमन अपने निश्चित समय में हुआ है, अन्यथा वह परिणमन निश्चित समय पर हुआ या आगे पीछे हुआ है – यह किस आधार पर कहा जा सकेगा?

एक ट्रेन किसी स्टेशन पर सुबह १० बजे आई। यदि उसके आने का सुनिश्चित समय ज्ञात न हो तो यह कैसे कहा जा सकेगा कि वह समय से पहले आई है, समय पर आई है या विलम्ब से आई है? सर्वज्ञतारूपी दर्पण में प्रत्येक कार्य का सुनिश्चित समय झलकता है, और वह कार्य उसी समय होता है, अतः सर्वज्ञता क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि में सबसे प्रबल ज्ञापक हेतु है।

प्रश्न १२. क्या वस्तु का परिणमन केवलज्ञान के आधीन है?

उत्तर :– प्रत्येक वस्तु का परिणमन उसकी तत्समय की योग्यतानुसार सहज होता है, अतः वह किसी के आधीन नहीं है। केवलज्ञानी भी अपनी योग्यता के कारण उस परिणमन को जानते मात्र हैं। जानने से वस्तु पराधीन नहीं हो जाती। हम सब जानते हैं कि रविवार के बाद सोमवार आएगा। तो क्या सोमवार का आना हमारे ज्ञान के आधीन हो गया? नहीं। अतः सर्वज्ञता और क्रमबद्धपर्याय में ज्ञाता-ज्ञेय सम्बन्ध मात्र है, कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न १३. अज्ञानियों द्वारा क्रमबद्धपर्याय का विरोध क्यों और कैसे किया जाता है?

उत्तर :– अनादि काल से यह जीव अपने को पर-पदार्थों का कर्त्ता मान रहा है। वह अपनी पर्यायों को भी अपनी इच्छानुसार उत्पन्न करना चाहता है; परन्तु क्रमबद्धपर्याय की स्वीकृति में उसकी इस मान्यता पर चोट पहुँचती है, इसलिए

वह सर्वमान्य सर्वज्ञता का ही विरोध करने लगता है। यद्यपि वह सर्वज्ञ की सत्ता का सीधा विरोध नहीं कर पाता; तथापि वह सर्वज्ञता की व्याख्याऐं बदल कर निम्नानुसार तर्क प्रस्तुत करता है :-

(अ) सर्वज्ञ भगवान भूतकाल और वर्तमानकाल की पर्यायों को तो जानते हैं, परंतु भविष्य की पर्यायों को नहीं जानते, क्योंकि अभी भविष्य की पर्यायें उत्पन्न ही नहीं हुई है।

(ब) सर्वज्ञ भगवान भविष्य को सशर्त जानते हैं अर्थात् जो पुण्य करेगा, वह स्वर्ग जाएगा तथा जो पढ़ेगा वह पास होगा।

(स) निश्चय से तो भगवान अपने आत्मा को ही जानते हैं, लोकालोक को जानना तो नियमसार गाथा १५९ में व्यवहार कहा गया है, अतः सर्वज्ञता भी अभूतार्थ हुई, इसलिये पर्यायों के क्रमबद्ध परिणमन का नियम भी असत्यार्थ हुआ।

(द) यदि सब कुछ निश्चित है तो पुरुषार्थ करने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। अतः सब लोग निष्क्रिय हो जायेंगे।

(इ) पर्यायों को क्रमबद्ध मानने पर एकान्त नियतवाद का प्रसंग आएगा, जबकि जैन-दर्शन अनेकान्तवादी दर्शन है।

(ई) जो होना है सो निश्चित है इसलिए यदि कोई किसी की हत्या करता है, चोरी, डकैती, व्यभिचार आदि पाप करता है, तो इसमें इसका क्या दोष? क्योंकि यह तो निश्चित था। अतः उसे दण्ड क्यों दिया जाए? इसप्रकार क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा से सब लोग स्वच्छन्दी हो जायेंगे?

प्रश्न १४. केवली भगवान भविष्य की पर्यायों को भी स्पष्ट जानते हैं - इस तथ्य की पुष्टि आगम एवं युक्ति के आधार से कीजिए?

उत्तर :- सर्वज्ञ द्वारा त्रिकालवर्ती पर्यायों को युगपत् प्रत्यक्ष जानने की पुष्टि निम्न आगम प्रमाणों द्वारा होती है :-

अ. तत्त्वार्थ सूत्र : अध्याय १ सूत्र ९ सर्वद्रव्यपर्यायेषुकेवलस्य की समस्त टीकायें।

ब. प्रवचनसार : गाथा ३९, ४७, २०० इत्यादि।

स. भगवती आराधना : गाथा २१४१

द. आचार्य अमितगतिकृत योगसार : अध्याय १ छन्द २८।

क. आप्तमीमांसा, अष्टशती, अष्टसहस्त्री, आप्त परीक्षा आदि न्याय ग्रन्थों के सर्वज्ञसिद्धि प्रकरण।

ख. नष्ट और अनुप्तन्न पर्यायों के ज्ञान के सम्बन्ध में धवला पुस्तक ६ में समागत निम्न शंका-समाधान ध्यान देने योग्य है।

"**शंका -** जो पदार्थ नष्ट हो चुके हैं और जो पदार्थ अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं, उनका केवलज्ञान से ज्ञान कैसे हो सकता है?

समाधान :- नहीं; क्योंकि केवलज्ञान के सहाय निरपेक्ष होने से बाह्य-पदार्थों की अपेक्षा के बिना उनके (विनष्ट और अनुत्पन्न पदार्थों के) ज्ञान की उत्पत्ति में कोई विरोध नहीं है।"

प्रवचनसार में द्रव्यार्थिकनय से भूत और भविष्य की पर्यायों को भी सत् कहकर उन्हें ज्ञान का ज्ञेय बताया गया है।

उक्त आगम प्रमाणों से केवली भगवान द्वारा भूत-भविष्य की पर्यायों का स्पष्ट जानना सिद्ध होता है, अतः सशर्त जानने की बात भी नहीं रहती।

प्रश्न १६. केवली भगवान लोकालोक को जानते हैं, ऐसा कहना व्यवहार है - इस कथन का यथार्थ आशय स्पष्ट कीजिए?

उत्तर :- इस कथन का आशय यह नहीं है कि वे लोकालोक को जानते ही नहीं। यहाँ लोकालोक के माध्यम से केवलज्ञान का परिचय कराया जा रहा है, अतः पराश्रित निरूपण होने से व्यवहार कहा गया है। इसीप्रकार भगवान पर-पदार्थों को तन्मय हुए बिना अर्थात् उन्हें अपना माने बिना और उसरूप परिणमित

हुए बिना जानते हैं। अतः तन्मयता का अभाव बताने के लिए व्यवहार कहा है, पर को जानने का अभाव बताने के लिए नहीं। इस सम्बन्ध में परमात्मप्रकाश अध्याय गाथा ५२ की टीका द्रष्टव्य है।

प्रश्न १७. क्रमबद्धपर्याय मानने से पुरुषार्थ व्यर्थ होने की आशंका का निराकरण कीजिए?

उत्तर :– क्रमबद्धपर्याय को स्वीकार करने से पर-पदार्थों और पर्यायों की कर्त्ताबुद्धि टूटकर ज्ञायक स्वभाव की श्रद्धा प्रगट होती है, जो कि मोक्षमार्ग में सम्यक् पुरुषार्थ है। इसके बल से ही सर्वज्ञता और क्रमबद्धपर्याय की सच्ची श्रद्धा होती है तथा पर और पर्यायों की कर्त्ताबुद्धि टूटती है।

भगवान के ज्ञान में प्रत्येक पर्याय स्पष्ट झलकती है, तो उसका पुरुषार्थ भी झलकता है क्योंकि पुरुषार्थ भी तो पर्याय है, अतः वह क्यों नहीं झलकेगा? यह बात क्रमबद्धपर्याय की परिभाषा में स्पष्ट कही गई है कि केवली भगवान, स्वभाव, पुरुषार्थ आदि सभी समवायों को तथा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आदि चतुष्टय को स्पष्ट जानते हैं; अतः पुरुषार्थ भी उनके ज्ञान में सुनिश्चित होने से पुरुषार्थ व्यर्थ होने के बदले सुनिश्चित है – ऐसा सिद्ध हुआ।

अज्ञानी स्वयं को पर-पदार्थों के परिणमन का कर्त्ता मानते हैं, अतः पर-कर्तृत्व के विकल्पों को तथा अपनी इच्छानुसार पर्यायों की उत्पत्ति के विकल्प को पुरुषार्थ समझते हैं; परन्तु यह उनकी विपरीत मान्यता है। पर और पर्यायों के कर्तृत्व का विकल्प विपरीत पुरुषार्थ है, जो कि संसार का कारण है। क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा से ऐसा पुरुषार्थ नष्ट होता है तथा अकर्त्ता स्वभाव की अनुभूति का पुरुषार्थ प्रगट होता है।

वस्तुतः क्रमबद्धपर्याय की स्वीकृति, सर्वज्ञता और ज्ञान स्वभाव की रुचि, तथा मुक्ति के मार्ग का सम्यक् पुरुषार्थ, – ये सभी एक ही भाव के पर्यायवाची नाम हैं। यही सम्यग्दर्शन है; उपशम, क्षयोपशम या क्षायिक भाव है; यही धर्म का प्रारम्भ है तथा भव-भ्रमण का अन्त है। अतः यह बात परम सत्य है कि जो जीव

क्रमबद्धपर्याय की सच्ची श्रद्धा करता है, भगवान के ज्ञान में उसके अधिक भव नहीं झलकते।

प्रश्न १८. क्रमबद्धपर्याय में एकान्त नियतवाद का निराकरण कीजिए?

उत्तर :– पाँच समवायों में मात्र काललब्धि या नियति से ही कार्य की उत्पत्ति मानने से और अन्य समवायों का निषेध करने से मिथ्या-एकान्तरूप नियतिवाद का प्रसंग आता है; परन्तु क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा में काल की मुख्यतापूर्वक अन्य समवायों की स्वीकृति भी है, अतः सम्यक्-एकान्त होता है, मिथ्या एकान्त नहीं। जैन-दर्शन वस्तु-स्वरूप को अनेकान्त के साथ सम्यक्-एकान्तरूप भी स्वीकार करता है।

प्रश्न १९. अकाल-मृत्यु और क्रमबद्धपर्याय में विरोध का निराकरण कीजिए?

उत्तर :– विष-भक्षण आदि के निमित्त से आयुकर्म की उदीरणा को अकाल मृत्यु कहते हैं। ये सभी घटनायें केवली भगवान के ज्ञान में पहले से ही ज्ञात हैं, इसलिए पूर्व निश्चित होने से स्वकाल में घटित होती हैं। अतः क्रमबद्धपर्याय के साथ इनका कोई विरोध नहीं आता। अकाल शब्द का अर्थ समय के पहले नहीं, अपितु काल से भिन्न समवायों की मुख्यता से है।

प्रश्न २०. अकालनय और क्रमबद्धपर्याय में विरोध का निराकरण कीजिए।

उत्तर :– अकाल मृत्यु के समान यहाँ भी अकाल शब्द में काल से भिन्न अन्य समवायों की मुख्यता है। कृत्रिम गर्मी से आम पकाया – ऐसा कहने में निमित्त की मुख्यता है, स्वकाल में आम पकने का निषेध नहीं। कृत्रिम गर्मी में भी सभी आम एक साथ नहीं पक जाते, कोई दो दिन में पकता है, कोई चार दिन में, अर्थात् जब जसकी पकने की योग्यता है तभी वह पकता है, आगे-पीछे नहीं। इस प्रकार अकालनय में स्वकाल में कार्य होने का निषेध न होने से क्रमबद्धपर्याय के साथ कोई विरोध नहीं आता।

प्रश्न २१. क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा से स्वच्छन्द होने की आशंका का निराकरण कीजिए?

उत्तर :– क्रमबद्धपर्याय की सच्ची श्रद्धा, ज्ञान स्वभाव की श्रद्धापूर्वक ही होती है और ज्ञान स्वभाव की श्रद्धावाला जीव ज्ञानी और विवेकी होता है, वह पाप का पोषण करके स्वच्छन्दी नहीं हो सकता।

क्या पूर्व निश्चित होने से कोई अपराध, अपराध नहीं रहेगा? वह अपराध उसने अपने स्वभाव को भूलकर विषय–कषायों की तीव्र आसक्ति के कारण किया गया है; भगवान ने भी उसे अपराधरूप में ही जाना है, अतः अपराध तो अपराध ही है, चाहे कोई उसे जाने या न जाने। अपराधी स्वयं तो उसे पहले से जानता ही है क्योंकि वह पूरी योजना बनाकर अपराध करता है। फिर जब उसके ज्ञान में पूर्व निश्चित होने पर भी अपराध पर अपराध रहता है तो केवली के ज्ञान में झलकने मात्र से वह अपराध नहीं रहेगा – यह कैसे कहा जा सकता है?

अपराध पूर्व निश्चित था इसलिए अपराधी को दण्ड नहीं मिलना चाहिए – यह तर्क भी हास्यास्पद है, क्योंकि अपराध को निश्चित माना जाए तो दण्ड विधान को निश्चित क्यों न माना जाए? हमारे संविधान में भी प्रत्येक अपराध का दण्ड निश्चित किया गया है, तो केवलज्ञान में निश्चित क्यों नहीं होगा? भगवान ने किसी को पाप करता हुआ देखा है तो उसका नरक जाना भी अवश्य देखा है। यह कैसे हो सकता है कि वे उसका पाप कार्य तो देखते हैं, परन्तु पाप का फल नहीं देखते! इससे तो उनका ज्ञान अधूरा और अप्रमाणिक हो जाएगा; परन्तु ऐसा नहीं है। उनका ज्ञान सकल–प्रत्यक्ष है।

इसप्रकार क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा से स्वच्छन्द होने का प्रश्न ही नहीं उठता, अपितु मिथ्यात्वरूपी महा–स्वच्छन्दता का नाश होता है।

प्रश्न २२. प्रथमानुयोग के द्वारा क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि कैसे होती है?

उत्तर :– सम्पूर्ण प्रथमानुयोग सर्वज्ञ भगवान, अवधिज्ञानी या मनःपर्ययज्ञानी मुनि भगवन्तों द्वारा की गई भविष्यकाल सम्बन्धी सुनिश्चित घोषणाओं से भरा हुआ है।

जैसे :– (१) भगवान नेमिनाथ द्वारा १२ वर्ष बाद द्वारका जलने की स्पष्ट घोषणा करना। साथ ही यह भी घोषित करना कि वह किस निमित्त से, कब और

कैसे जलेगी? भगवान की बात का भरोसा नहीं करनेवालों के द्वारा अनेक प्रयत्न करने पर भी सब–कुछ वैसा ही हुआ, जैसा भगवान ने कहा था।

(२) भगवान आदिनाथ ने भी भगवान महावीर के जीव मारीचि के सम्बन्ध में सब कुछ एक कोडा–कोडी सागर पहले ही बता दिया था, कि वह इस अवसर्पिणी काल का चौबीसवाँ तीर्थंकर होगा।

(३) आचार्य भद्रबाहु ने निमित्त–ज्ञान के आधार पर ही यह बता दिया था कि उत्तर भारत में १२ वर्ष तक अकाल रहेगा–यह घोषणा भी पूर्णतः सत्य हुई थी।

(४) सम्राट चन्द्रगुप्त के स्वप्नों के आधार पर भविष्य की घोषणायें की गई थीं, जो वैसी ही घटित हुई।

प्रश्न २३. करणानुयोग के आधार पर क्रमबद्धपर्याय कैसे सिद्ध होती है?

उत्तर :– सारा करणानुयोग ही सुनिश्चित नियमों पर आधारित है, उसमें हमारी बुद्धि के अनुसार कुछ नहीं होता। जैसे –

(१) छः महीने आठ समय में छः सौ आठ जीव नित्य निगोद से निकलेंगे और इतने ही समय में इतने ही जीव मोक्ष जावेंगे।

(२) संसारी जीव निगोद पर्याय से कुछ अधिक दो हजार सागर के लिए ही निकलता है, उसमें भी दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय असंज्ञी पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव, नारकी आदि के भवों की निश्चित संख्या होती है। उदाहरण के लिए मनुष्यों के भवों की संख्या मात्र ४८ है।

(३) प्रत्येक मिथ्यादृष्टि संसारी जीव को पंच परावर्तनरूप संसार में घूमना पड़ता है।

(४) भूत–वर्तमान–भविष्य के तीर्थंकरों की संख्या भी निश्चित ही है।

(५) प्रत्येक गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीव समान आदि के जीवों की संख्या भी निश्चित है।

प्रश्न २४. चरणानुयोग के ग्रन्थों के आधार पर क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि कैसे होती है?

उत्तर :– चरणानुयोग के ग्रन्थ रत्नकरण्ड श्रावकाचार, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, अष्टपाहुड आदि के द्वारा सर्वज्ञता या क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि होती है, तथा देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप, खाद्य-अखाद्य का निर्णय, सर्वज्ञ प्रणीत आगम के अनुसार ही किया जाता है, अन्यथा नहीं। अतः यह भी क्रमबद्धपर्याय का पोषक प्रमाण है।

प्रश्न २५. द्रव्यानुयोग के अनुसार क्रमबद्धपर्याय कैसे सिद्ध की जाती है?

उत्तर :– समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय संग्रह, तत्वार्थसूत्र और उसकी टीकायें-सर्वार्थसिद्धि, तत्वार्थ राजवार्तिक, तत्वार्थ श्लोकवार्तिक आदि, अष्टसहस्री, आप्तमीमांसा, परमात्म-प्रकाश, योगसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक आदि ग्रन्थों से भी क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि निम्न विषयों के आधार पर होती है।

१) कारण-कार्य व्यवस्था
२) अकर्त्तावाद
३) द्रव्य-गुण-पर्याय
४) वस्तु स्वातंत्र्य
५) पाँच समवाय
६) निमित्त-उपादान
७) सर्वज्ञता
८) प्रत्येक पर्याय का स्वकाल
९) पर्याय सत्
१०) सम्यक्-पुरुषार्थ
११) स्वचतुष्टय
१२) सम्यक् नियतिवाद

१३) सैंतालीस शक्तियाँ
१४) ज्ञान स्वभाव-ज्ञेय स्वभाव
१५) कालनय-अकालनय
१६) पर्यायों का क्रम-अक्रम स्वरूप

प्रश्न २६. क्रमबद्धपर्याय को सुनिश्चित करने वाली आत्मा की छह शक्तियों के नाम और उनकी परिभाषा लिखिए?

उत्तर :– समयसार ग्रन्थ की आत्मख्याति टीका में आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने ४७ शक्तियों का वर्णन किया है। इनमें से निम्न छह शक्तियों द्वारा वस्तु के परिणमन की क्रमबद्ध-व्यवस्था सुनिश्चित होती है।

(१) भाव शक्ति :– इस शक्ति के कारण, द्रव्य अपनी वर्तमान अवस्था से युक्त होता है।

(२) अभाव शक्ति :– इस शक्ति के कारण, द्रव्य में वर्तमान अवस्था के अतिरिक्त और दूसरी अवस्था नहीं होती।

(३) भाव-अभावशक्ति :– इस शक्ति के कारण द्रव्य में वर्तमान पर्याय का आगामी समय में नियम से अभाव हो जाएगा।

(४) अभाव-भाव शक्ति :– इस शक्ति के कारण, आगामी पर्याय आगामी समय में नियम से उत्पन्न होगी।

(५) भाव-भाव शक्ति :– इस शक्ति के कारण, द्रव्य में जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होने वाली है, वही पर्याय होगी।

(६) अभाव-अभाव शक्ति :– इस शक्ति के कारण, द्रव्य में जो पर्याय उत्पन्न नहीं होना है, वह नहीं होगी।

प्रश्न २७. क्या क्रमबद्ध-पर्याय की श्रद्धा करना अनिवार्य है? यदि हाँ तो नरक और तिर्यञ्च गति में इसकी श्रद्धा के बिना ही सम्यग्दर्शन कैसे हो जाता है?

उत्तर :– भले हम क्रमबद्धपर्याय की भाषा और परिभाषा न जानें, परन्तु सम्यग्दर्शन के लिए देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा तो अनिवार्य है, सच्चे देव की श्रद्धा में सर्वज्ञता और क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा भी समाहित है। द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप में भी क्रमबद्धपर्याय व्यवस्था सम्मिलित है और सम्यग्दर्शन के लिए द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप तो जानना ही पड़ेगा।

पर-पदार्थों और पर्याय की कर्त्ता-बुद्धि टूटे बिना दृष्टि स्वभाव-सन्मुख नहीं हो सकती और क्रमबद्धपर्याय की सच्ची श्रद्धा हुए बिना पर और पर्यायों की कर्त्ता-बुद्धि नहीं टूट सकती। अतः क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा के बिना सम्यग्दर्शन का सच्चा पुरुषार्थ नहीं हो सकता।

नरक और तिर्यञ्च गति में भी जिसे सम्यग्दर्शन होता है, उसे देव-शास्त्र-गुरु, सात तत्व, स्व-पर आदि के स्वरूप का भाव-भासन तो होता ही है, अन्यथा सम्यग्दर्शन कैसे होगा? इन सबमें पर और पर्यायों के अकर्त्ता स्वरूप ज्ञायक स्वभाव की श्रद्धा अर्थात् क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा का भाव भी आ ही जाता है।

नरक और तिर्यञ्च गति की व्यवस्था मनुष्य गति में कैसे लागू हो सकती है? वहाँ तो शास्त्राभ्यास, तत्त्व-चर्चा, धन्धा-व्यापार आदि की व्यवस्था भी नहीं है। यदि हम उनका बहाना लेकर तत्त्व-निर्णय से बचना चाहते हैं तो क्या उन जैसा खान-पान, रहन-सहन आदि भी अपनाने को तैयार हैं? यदि नहीं तो फिर बहाना बनाने से क्या फायदा ? इसमें हमारा यह कीमती मनुष्यभव व्यर्थ चला जाएगा। अतः यदि हम अन्तर की गहराई से संसार के दुःखों से मुक्ति चाहते हैं तो हमें आप्त और आगम की श्रद्धा पूर्वक निष्पक्ष भाव से तत्त्व-निर्णय करके सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा को समझकर उसमें समा जाने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्न २८. क्रमबद्धपर्याय व्यवस्था में अनेकान्त किस प्रकार घटित होता है।

उत्तर :– पर्याय किसी अपेक्षा क्रमबद्ध हैं और किसी अपेक्षा अक्रमबद्ध हैं, ऐसा अनेकान्त घटित करते समय अक्रमबद्ध को निम्न अपेक्षाओं के सन्दर्भ समझना आवश्यक है।

यहाँ अक्रमबद्ध का आशय अव्यवस्थित या अनियमितिपने से नहीं है, अपितु एक साथ होने से है।

भेद की अपेक्षा गुणों को भी पर्याय कहा जाता है। द्रव्य में सभी गुण एक साथ होते हैं, अतः उन्हें सहवर्ती पर्याय कहते हैं। अतः सहवर्ती पर्यायों की अपेक्षा पर्यायों को अक्रमवर्ती कहा जाता है।

सभी गुण एक साथ परिणमन करते हैं, अतः प्रत्येक द्रव्य में अनन्त पर्यायें एक साथ होने से वे अक्रमवर्ती हैं। संसारी जीव में गुणस्थानरूप पर्यायें तो क्रम से अर्थात् एक के बाद निश्चित होती हैं, परन्तु गति, इन्द्रिय, काय आदि चौदह मार्गणायें एक साथ होती है अतः मार्गणारूप पर्यायें अक्रमवर्ती हैं।

इसप्रकार पर्यायें कथञ्चिंत् अक्रमबद्ध भी हैं – इस कथन का यथार्थ आशय समझना चाहिए।

****

केवलज्ञानमूर्ति यह आतम नय-व्यवहार कला द्वारा।
वास्तव में सम्पूर्ण विश्व का नितप्रति है जाननहारा।।
मुक्तिलक्ष्मीरूपी कामिनि के कोमल वदनाम्बुज पर।
कामक्लेश, सौभाग्य चिन्हयुत शोभा को फैलाता है।।
श्री जिनेश ने क्लेश और रागादिक मल का किया विनाश।
निश्चय से देवाधिदेव वे निज स्वरूप का करें प्रकाश।।

– नियमसार कलश २७२ का पद्यानुवाद

अध्याय ५

क्रमबद्धपर्याय : प्रासंगिक प्रश्नोत्तर

चौथे अध्याय में क्रमबद्धपर्याय से सीधे सम्बन्धित प्रश्नोत्तर दिए गए हैं, जिनके आधार पर लघु-शिविरों में यह विषय अच्छी तरह पढ़ाया जा सकता है। यदि समय हो तो निम्न प्रश्नोत्तरों के आधार पर पाठ्य-पुस्तक में समागत अन्य प्रासंगिक प्रकरणों को तैयार कराना चाहिए। ये प्रकरण क्रमबद्धपर्याय के पोषक हैं, अतः इनका निर्णय करने से क्रमबद्धपर्याय का निर्णय निर्मल और दृढ़ होता है।

प्रश्न १. त्रिलक्षण परिणाम पद्धति क्या है?

उत्तर :– प्रत्येक द्रव्य के प्रदेश (कालद्रव्य को छोड़कर) और पर्यायें अपने-आपने स्वरूप से उत्पन्न और पूर्वरूप से विनष्ट तथा सभी परिणामों में एक प्रवाहपना होने से अनुत्पन्न और अवनिष्ट अर्थात् ध्रुव हैं। इसप्रकार प्रत्येक प्रदेश और पर्याय एक ही समय में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। द्रव्य इन परिणामों की परम्परा में स्वभाव से ही सदा रहता है, इसलिए वह स्वयं भी उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। इस प्रकार एक ही परिणाम में एक ही साथ उत्पाद-व्यय ध्रौव्यपना घटित होता है; यही त्रिलक्षण परिणाम पद्धति है।

प्रश्न २. प्रदेश और परिणाम की परिभाषा बताते हुए उनमें क्रम का कारण बताइये?

उत्तर :–विस्तार क्रम के सूक्ष्म अंश को प्रदेश और प्रवाहक्रम के सूक्ष्म अंश को परिणाम कहते हैं। बहुप्रदेशी द्रव्यों के प्रदेशों में तथा प्रत्येक द्रव्य के परिणामों में एक नियमित क्रम होता है।

जिसप्रकार द्रव्य को सम्पूर्ण विस्तार क्षेत्र के रूप में देखा जाए, तो उसका सम्पूर्ण क्षेत्र एक ही है; उसीप्रकार द्रव्य के तीनों काल के परिणामों को एक साथ लक्ष्य में लेने पर उसका काल त्रैकालिक एक है। जिसप्रकार क्षेत्र में एक नियमित विस्तारक्रम है, उसीप्रकार काल में भी पर्यायों का एक नियमित प्रवाह क्रम है। जिसप्रकार नियमित विस्तारक्रम में फेरफार सम्भव नहीं है, उसीप्रकार नियमित प्रवाहक्रम में भी परिवर्तन सम्भव नहीं है। प्रत्येक प्रदेश का स्व-स्थान और प्रत्येक परिणाम का स्व-काल सुनिश्चित है।

प्रश्न ३. त्रिलक्षण परिणाम पद्धति को क्षेत्र और काल की अपेक्षा उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर :– एक व्यक्ति बम्बई से दिल्ली की यात्रा कर रहा है। जब बड़ौदा आया तब उसने अपने सहयात्री से पूछा कि सूरत कब आएगा? तब वह सहयात्री बोला कि भाई साहब! सूरत तो निकल गया, अब बड़ौदा आ गया है।

बड़ौदा का आना उसका स्व-रूप से उत्पाद है तथा बड़ौदा, सूरत के अभावपूर्वक आया है। अतः वही सूरत की अपेक्षा अर्थात् पूर्व-रूप से व्ययस्वरूप है, तथा क्षेत्र के अखण्ड विस्तार में बड़ौदा जहाँ का तहाँ रहता है, वह न कहीं आता है न कहीं जाता है, अतः वही ध्रौव्यस्वरूप है। इसप्रकार बड़ौदा नामक क्षेत्र के समान प्रत्येक द्रव्य के प्रदेशों में प्रति समय उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य घटित होते हैं।

एक जीव को सम्यग्दर्शन हुआ। जिसकाल में सम्यग्दर्शन हुआ उस काल का अर्थात् पर्याय का स्वरूप वह सम्यग्दर्शन स्वरूप है, अतः वह काल (परिणाम) अपने स्व-रूप (सम्यग्दर्शन) को प्राप्त करता हुआ उत्पन्न होने से उत्पादरूप है। सम्यग्दर्शन, मिथ्यात्व का अभाव करके हुआ है, अतः सम्यक्त्व का उत्पाद ही मिथ्यात्व का व्यय है, इसलिए सम्यक्त्व की उत्पत्ति मिथ्यात्व के व्ययरूप है। (यह कथन सम्यक्त्व की प्रथम पर्याय की अपेक्षा है। आगामी पर्यायें अपनी-अपनी अनन्तर पूर्वक्षणवर्ती सम्यक्त्व पर्यायों के व्ययरूप हैं) परिणामों के अखण्ड

प्रवाह की अपेक्षा देखा जाए तो वह सम्यक्त्व भाव अपने स्वकाल में सदैव निश्चित है, कभी आगे-पीछे नहीं होगा, अतः अखण्ड प्रवाह में उसका काल ध्रुव है। इसप्रकार सम्यग्दर्शनरूप परिणाम में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य एक साथ घटित होने से वह त्रिलक्षणमय है। यही त्रिलक्षण परिणाम पद्धति है।

प्रश्न ४. सम्यग्दर्शन पर्याय कालरूप है या भावरूप है?

उत्तर :- तत्त्वार्थ सूत्र ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में जीव के तिरेपन भावों का वर्णन किया गया है। उसमें सम्यग्दर्शन की चर्चा उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक भाव के अन्तर्गत आई है। अतः जीव के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में सम्यग्दर्शन उसका अन्तर्भाव का अन्तर्भाव भाव में ही है। जब द्रव्य-गुण-पर्याय की चर्चा की जाए, तब काल और भाव दोनों के अभेदरूप से उसे पर्याय कहा जाता है।

मिथ्यादर्शन तथा शुभाशुभ भाव औदयिकभाव हैं। उपशम क्षयोपशम, क्षायिक और औदयिक ये चारों भाव पर्यायरूप हैं, अर्थात् प्रवाहक्रम के सूक्ष्म अंशरूप परिणामों में उत्पन्न होने से उत्पाद-व्ययरूप हैं। परम-पारिणामिक भाव स्वरूप ज्ञायक भाव त्रिकाल, एक अखण्ड ध्रुवरूप है, वह उत्पाद-व्ययरूप नहीं है।

प्रश्न ५. द्रव्य-क्षेत्र काल और भाव परस्पर भेदरूप हैं या अभेदरूप?

उत्तर :- भाई! वस्तु में भेद और अभेद दोनों धर्म हैं, अतः उत्पाद-व्यय-ध्रुव; द्रव्य-गुण-पर्याय तथा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव; कथञ्चित् भिन्न भी हैं और कथञ्चित अभिन्न भी हैं। जब वस्तु को उसके स्व-चतुष्टय के माध्यम से समझा जाता है तो इन चारों का भिन्न-भिन्न स्वरूप निम्नानुसार समझना चाहिए :-

द्रव्य = गुण-पर्यायों अथवा क्षेत्र काल और भाव को धारण करने वाली मूल सत्ता।

क्षेत्र = द्रव्य का विस्तार अर्थात् उसके द्वारा ग्रहण किया गया स्थान।

काल = द्रव्य की अनादि-अनन्त अखण्ड स्थिति जिसमें प्रतिसमय-वर्ती परिणमन अखण्डरूप से सम्मिलित हैं।

भाव = द्रव्य की शक्तियां, गुण, धर्म, स्वभाव आदि।

मोह-राग-द्वेष, पुण्य-पाप, आदि विकारी भाव वस्तुतः द्रव्य के स्वचतुष्टय में प्रतिष्ठित नहीं हैं। वे पानी में पड़ी तेल की बूंद के समान ऊपर-ऊपर तैरते हैं; अर्थात् वे प्रवाहक्रम के कुछ अंशों की उपाधि हैं, अतः उन्हें औपाधिकभाव भी कहते हैं। उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक भाव स्वभाव के अवलम्बन से होते हैं अतः इन्हें स्वभाव-भाव कहते हैं। त्रिकाली ज्ञायकभाव की अपेक्षा नियमसार गाथा ५० में इन चारों भावों को पर-द्रव्य और पर-स्वभाव कहकर हेय कहा है।

वस्तुतः काल तो समयवाची शब्द है। प्रत्येक द्रव्य और प्रत्येक गुण में प्रति समयवर्ती सूक्ष्म अंश-भेद होता है, जिसे एक समय की पर्याय कहा जाता है। ये उपशमादि चार भाव उस गुण की तत्समय की पर्यायगत योग्यता से स्वयं उत्पन्न होते हैं। कर्म की उपशमादि पर्यायें इनमें निमित्त होती हैं, अतः इन्हें नैमित्तिक भाव भी कहते हैं। किस कालाँश में कौनसा भाव उत्पन्न होगा - यह निश्चित हैं, तथा इसी नियम को क्रमबद्धपर्याय कहते हैं।

जिसप्रकार साइकिल की चैन में अनेक कड़ियां होती हैं, जिनके बीच का स्थान खाली होता है। साइकिल चलाते समय एक-एक कड़ी के खाली स्थान में गेयर का एक-एक दांता खचित होता जाता है, उसीप्रकार द्रव्य का काल पक्ष साइकिल की अखण्ड चैन के समान है; उसकी कड़ियां प्रवाहक्रम का सूक्ष्म अंश मात्र हैं, तथा उपशमादि चार भावों से कथंञ्चित् भिन्न है। द्रव्यरूपी साइकिल निरन्तर गतिशील रहती है, अतः उसकी प्रत्येक कड़ी के खाली स्थान में उपशमादि चार भावरूपी दांता खचित होता जाता है। किस कड़ी में कौन सा दांता खचित होगा, अर्थात् किस काल (पर्याय) में कौन सा भाव खचित होगा - यह वस्तु की परिणमन व्यवस्था में निश्चित है। तदनुरूप पुरुषार्थ, निमित्त, आदि सभी कुछ निश्चित है, और सर्वज्ञ के ज्ञान में झलकता है।

प्रश्न ६. द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में दृष्टि का विषय क्या है?

उत्तर :- दृष्टि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमय अखण्ड वस्तु को ही भेद और अभेद का विकल्प किये बिना अपना विषय बनाती है। सर्वप्रथम ज्ञान द्वारा भाव

की मुख्यता से अपने स्व-रूप का निर्णय होता है, जिसमें वह द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को यथावत् अर्थात् कथञ्चित् भिन्न और कथञ्चित् अभिन्न जानता है। उसमें भी वह अभेद को मुख्य करके निजरूप तथा भेद को गौण करके पररूप जानता है। यही परमशुद्धनिश्चयनय अथवा परमभावग्राहीशुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषय है। परन्तु नय में अपर पक्ष गौण रहता है, उसका निषेध नहीं होता; जबकि दृष्टि का स्वरूप निर्विकल्प प्रतीति मात्र है, उसमें मुख्य-गौण करने का स्वभाव ही नहीं है। **दृष्टि में सदैव ज्ञायक ही मुख्य रहता है, उसमें पर्याय अर्थात् भेद नहीं है –** इत्यादि सभी कथन ज्ञान की प्रधानता से दृष्टि के विषय को अस्ति-नास्ति से बताते हैं।

प्रश्न ७. निम्न कारिक की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिए ?

अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं, हेतु द्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा।
अनीश्वरो जन्तुरहं क्रियार्त्त : संहत्य कार्येष्विति साध्ववादी ।।

आचार्य समन्तभद्र ने स्वयंभूत स्तोत्र के ३३वें छन्द में उक्त कारिका के माध्यम से भवितव्यता की महिमा बनाई है।

वे कहते हैं कि भवितव्यता की शक्ति अलंघ्य है, अर्थात् कोई भी व्यक्ति भवितव्यता अर्थात् होने योग्य कार्य का उल्लंघन करके उस कार्य को होने से रोक नहीं सकता और उसके स्थान पर दूसरा कार्य नहीं कर सकता। जो होना है वही होगा अथवा जो हो रहा है वही होना था।

यदि कोई प्रश्न करे कि आप यह कैसे कह सकते हैं कि जो हो रहा है वही होना था? इसके समाधान के लिये ही आचार्यदेव ने 'हेतुद्वयाविष्कृत कार्यलिङ्गा' पद का प्रयोग किया है। हेतुद्वय अर्थात् उपादान और निमित्त अथवा अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग कारणों की सन्निधि में उत्पन्न होने वाला कार्य ही भवितव्यता को सूचित करता है। विवक्षित कार्य से बढ़कर और कौन सा प्रमाण हो सकता है कि यह होना था; क्योंकि वह तो प्रत्यक्ष में हो ही रहा है। यह निरीह संसारी प्राणी भवितव्यता के बिना अनेक सहकारी कारणों को मिलाकर भी कार्य करने में समर्थ

नहीं होता, फिर भी मैं इस कार्य को कर सकता हूँ – इस प्रकार के अहंकार से पीड़ित रहता है।

प्रश्न ८. जैन-दर्शन में अकर्त्तावाद के स्वरूप की व्याख्या कीजिए?

उत्तर :– जैन-दर्शन में अकर्त्तावाद के मुख्य चार बिन्दु है।

(१) ईश्वर इस जगत का कर्त्ता नहीं है

(२) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की क्रिया का कर्त्ता नहीं है।

(३) ज्ञानी अपने विकारी भावों का भी कर्त्ता नहीं है।

(४) द्रव्य अपनी पर्याय का कर्त्ता होने पर भी उनके क्रम में परिवर्तन का कर्त्ता नहीं है।

अकर्त्तावाद को निम्न तीन रूपों में भी व्यक्त किया जाता है।

(अ) स्वकर्त्तत्व :– प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्यायों का कर्त्ता है, अन्य द्रव्य की पर्यायों का कर्त्ता नहीं है।

(ब) सहज कर्त्तत्व :– प्रत्येक द्रव्य परिणमन स्वभावी होने से उसमें प्रति समय नई-नई पर्यायें सहज ही अपने-आप उत्पन्न होती रहती हैं। इसके लिए उसे अलग से कुछ नहीं करना पड़ता।

(स) अकर्त्तत्व : प्रत्येक द्रव्य पर-द्रव्य और उनकी पर्यायों का तथा अपनी पर्यायों के क्रम में परिवर्तन का कर्त्ता नहीं है।

इसप्रकार जैन-दर्शन का अकर्त्तावाद मात्र ईश्वर के सृष्टि-कर्तृत्व का खंडन नहीं करता, अपितु पर-द्रव्यों की पर्यायों तथा अपनी पर्यायों में परिवर्तन का भी निषेध करता है। द्रव्य अपनी पर्यायों का भी कर्त्ता नहीं है – इस अपेक्षा को क्रमबद्ध पर्याय प्रकरण में मुख्य नहीं किया गया है।

प्रश्न ९. ज्ञान की उत्पत्ति की व्यवस्था के सम्बन्ध में जैन-दर्शन और बौद्ध-दर्शन की मान्यताओं की तुलनात्मक मीमांसा कीजिए?

उत्तर :– जैन-दर्शन के अनुसार ज्ञेय के अनुसार नहीं ज्ञान होता, अपितु ज्ञान के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है। इसका आशय यह है कि जैसा ज्ञेय होगा वैसा ही

ज्ञान में झलकेगा – ऐसा नहीं है; अपितु ज्ञान में जिस ज्ञेय को जैसा जानने की योग्यता है, वह उसी ज्ञेय को वैसा ही जानेगा। इस नियम को निम्न उदाहरणों से समझा जा सकता है।

सामने ज्ञेय है फिर भी ज्ञान नहीं होता। चश्मा या टोपी पहने हुए भी कुछ लोग कभी-कभी यह भूल जाते हैं और वे चश्मा या टोपी को खोजने लगते हैं। सामने कोई व्यक्ति खड़ा है परन्तु हमारा उपयोग अन्यत्र रहने के कारण हम उसे देख ही नहीं पाते। इसीप्रकार ज्ञेय कुछ और है और ज्ञान में कुछ और झलकता है। सामने रस्सी लटक रही हो तो भी कुछ लोगों को उसमें सर्प लटकने का भ्रम हो जाता है। कारागार में बन्द कामी को अन्धकार में भी अपनी प्रियतमा का मुख स्पष्ट दिखाई देता है। इन सभी घटनाओं से सिद्ध होता है कि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, अपितु ज्ञान के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

बौद्ध-दर्शन में ज्ञान उत्पन्न होने की प्रक्रिया को तदुत्पत्ति, तदाकार, और तदध्यवसाय के रूप में माना गया है। अर्थात् ज्ञान, ज्ञेय से उत्पन्न होता है, ज्ञेयाकार होता है, और ज्ञेय को जानता है। परन्तु जैन-दर्शन के अनुसार ज्ञान अपनी योग्यता से उत्पन्न होता है, ज्ञानकार ही रहता है, और ज्ञेय को जानते हुए भी ज्ञान में ही व्यवसाय करता है। ज्ञान कब किस ज्ञेय को किसरूप में जानेगा इसका नियम उसकी योग्यता से ही निश्चित होगा।

ज्ञान की उत्पत्ति के नियम को परिभाषित करते हुए परीक्षा मुख अध्याय २ के नवमें सूत्र में आचार्य माणिक्यनन्दि लिखते हैं।

स्वावरणक्षयोपशमलक्षण योग्यता हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति

विवक्षित ज्ञेय सम्बन्धी आवरण कर्म का क्षयोपशम ही योग्यता का लक्षण है और यह योग्यता ही सुनिश्चित करती है कि ज्ञान कब किसे कैसा जानेगा।

प्रश्न १०. जैन-दर्शन के अनुसार अनेकान्त में भी अनेकान्त हैं – इस कथन का आशय स्पष्ट कीजिए?

उत्तर :– जैन-दर्शन वस्तु को सर्वथा अनेकान्तरूप नहीं मानता, अपितु कथञ्चित् अनेकान्तरूप और कथञ्चित् एकान्तरूप मानता है। सर्वथा

अनेकान्तरूप मानने पर कथञ्चित् एकान्त अर्थात् सम्यक्-एकान्त का निषेध होने से मिथ्या-एकान्त हो जाता है। अतः अनेकान्त के साथ सम्यक्-एकान्त भी स्वीकार करने पर सम्यक्-अनेकान्त होता है। इसप्रकार वस्तु को कथञ्चित्-अनेकान्त और कथञ्चित्-एकान्तरूप स्वीकार करना ही अनेकान्त में अनेकान्त है।

आचार्य समन्तभद्र ने स्वयंभूस्तोत्र में अरनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कारिका क्रमांक १०३ में यही भाव व्यक्त किया है।

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाण नय साधनः।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तेऽर्पितान्नयात्॥

प्रमाण और नय हैं साधन जिसके, ऐसा अनेकान्त भी अनेकान्त स्वरूप है; क्योंकि सर्वांशग्राही प्रमाण की अपेक्षा वस्तु अनेकान्तस्वरूप एवं अंशग्राही नय की अपेक्षा वस्तु एकान्तरूप सिद्ध है।

किसी वृक्ष में शाखा, पुष्प, फल आदि अंगों का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है, अतः वे सम्यक् -एकान्तरूप हैं। उनके समुदायरूप वृक्ष सम्यक्-अनेकान्तरूप है यदि शाखा आदि सम्यक्-एकान्तों का सर्वथा निषेध किया जाए तो अनेकान्तरूपी वृक्ष का भी निषेध हो जाएगा। अतः सम्यक्-एकान्त सहित अनेकान्त ही सम्यक्-अनेकान्त है। यदि सर्वथा एकान्त अर्थात् मात्र शाखा को ही स्वीकार किया जाए तो जड़ आदि अन्य अंगों का निषेध होने पर शाखा तथा वृक्ष का भी लोप हो जाएगा। अतः जड़, शाखा, पुष्प आदि सभी अंगों तथा उनके समुदायरूप अंगों का समूह ही वृक्ष है। इसीप्रकार गुण-पर्यायरूप अंश तथा उन्हें धारण करने वाले अंशी को मिलाकर ही वस्तु का स्वरूप परिपूर्ण होता है।

प्रश्न ११. एकान्त और अनेकान्त के भेद बताते हुए उनकी परिभाषा लिखिए?

उत्तर :– एकान्त और अनेकान्त दोनों के मिथ्या और सम्यक् से भेद दो-दो भेद होते हैं।

सम्यक् एकान्त :– नय सम्यक् एकान्तरूप हैं, अन्य धर्मों को गौण करते हुए किसी एक धर्म को मुख्य करके वस्तु को देखना सम्यक्-एकान्त है। जैसे – वस्तु कथञ्चित् नित्य है।

मिथ्या एकान्त :– नयाभास मिथ्या-एकान्तरूप हैं, अन्य धर्मों का निषेध करते हुए किसी एक धर्म को ही सर्वथा स्वीकार करके वस्तु को देखना मिथ्या एकान्त है। जैसे–वस्तु सर्वथा नित्य है।

सम्यक्–अनेकान्त :– सापेक्षनयों का समूह अर्थात् प्रमाण सम्यक्-अनेकान्तरूप है। वस्तु के प्रत्येक धर्म को मुख्य गौण किए बिना स्वीकार करना सम्यक्-अनेकान्त है। जैसे – वस्तु कथंञ्चित् नित्य और कथंञ्चित् अनित्य है।

मिथ्या–अनेकान्त :– निरपेक्षनयों का समूह अर्थात् प्रमाणभास मिथ्या अनेकान्त है। वस्तु के धर्मों को अपेक्षा लगाए बिना स्वीकार करना मिथ्या-अनेकान्त है। जैसे – वस्तु सर्वथा नित्य और सर्वथा-अनित्यरूप है। इसे उभयैकान्त भी कहते हैं।

प्रश्न १२. पाँच समवायों का स्वरूप बताइये?

उत्तर :– प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति में पाँच बातें होना अनिवार्य है। इन पाँच तथ्यों (□□□□ □□□□□□□□) को ही पाँच समवाय कहते हैं। इन समवायों की चर्चा किसी न किसी कार्य विशेष के सन्दर्भ में ही की जाती है क्योंकि ये समवाय ही उस विशेष कार्य की उत्पत्ति के कारण बनते हैं। इनका स्वरूप निम्नानुसार है।

(१) स्वभाव :– किसी भी पदार्थ में किसी कार्य विशेषरूप परिणमित होने की शक्ति उसका स्वभाव है। पदार्थ स्वभाव की मर्यादा के विरुद्ध किसी कार्य को उत्पन्न नहीं कर सकता। जैसे तिल में से तेल उत्पन्न करने की शक्ति है, रेत में नहीं। आत्मा में सम्यग्दर्शन उत्पन्न करने की शक्ति है, पुद्‌गल में नहीं।

(२) पुरुषार्थ :– कार्यरूप परिणमित होने में पदार्थ की शक्ति का उपयोग (परिणमन) होना पुरुषार्थ है। प्रत्येक पदार्थ में प्रति समय पर्यायों की उत्पत्ति में उसके वीर्य गुण का परिणमन होता है। अर्थात् उसकी शक्ति का उपयोग होता है। यही पुरुषार्थ है जैसे – तिल में से तेल निकलते समय उसकी शक्ति का परिणमन होता है। आत्मा में सम्यक्त्वरूप कार्य होते समय उसकी श्रद्धा गुण की परिणमन शक्ति काम आती हैं। अतः स्वभाव द्वारा कार्यरूप परिणमित होना ही पुरुषार्थ है।

प्रत्येक पदार्थ में प्रत्येक कार्य पुरुषार्थ पूर्वक ही होता है अर्थात् उसमें उसकी परिणमन शक्ति खर्च होती है। कार यदि आगे चले तो भी पेट्रोल जलता है और पीछे चले तो भी पेट्रोल जलता है। सातवें नरक की आयु बांधने योग्य परिणामों में तीव्रतम पापरूप पुरुषार्थ, तीर्थंकर प्रकृति बाँधने योग्य परिणामों में तीव्रतम पुण्यरूप पुरुषार्थ और सकल कर्मक्षय योग्य परिणमों में स्वभाव-सन्मुखता का अनन्त पुरुषार्थ होता है।

मोक्षमार्ग के प्रकरण में पुरुषार्थ की व्याख्या निम्नानुसार की जाती है।

पुरु=उत्तम चेतना गुण में, सेते=स्वामी होकर प्रवर्तन करे, अर्थात् ज्ञान-दर्शन चेतना के स्वामी को पुरुष कहते हैं। अर्थ = प्रयोजन। उत्तम चेतना गुण के स्वामी होकर प्रवर्तन करना जिसका प्रयोजन है, उसे पुरुषार्थ कहते हैं। मुक्ति के मार्ग में आत्मानुभव की प्राप्ति का प्रयास ही पुरुषार्थ है।

मोह-राग-द्वेष आदि परिणामों को मोक्षमार्ग की अपेक्षा मिथ्यापुरुषार्थ, विपरीतपुरुषार्थ, नपुंसकता, पुरुषार्थ की कमजोरी इत्यादि शब्दों से सम्बोधित किया जाता है।

(३) काललब्धि :– किसी कार्य की उत्पत्ति का स्व-काल ही काललब्धि है। जिस समय तिल में से तेल निकला वह समय ही तेल निकलने की काललब्धि है। अथवा जिस समय जीव को सम्यग्दर्शन हुआ वह समय ही काललब्धि है। प्रत्येक कार्य अपने स्व-काल में त्रिकाल विद्यमान रहता है, तथा स्वकाल आने पर ही वस्तु में प्रगट होता है। किसी कार्य के प्रगट होने का स्व-काल निश्चित होना ही क्रमबद्धपर्याय है। उसके स्व-काल से पहले या पीछे उसे प्रगट नहीं किया जा सकता, तथा स्वकाल में प्रगट होने से उसे रोका नहीं जा सकता।

(४) भवितव्य :– होने योग्य कार्य ही भवितव्य है। इसे होनहार भी कहते हैं। तिल में से तेल निकला अथवा जीव को सम्यग्दर्शन हुआ, तो तेल और सम्यग्दर्शन कार्य है अर्थात् भवितव्य है। भू-धातु में तव्यत् प्रत्यय लगाने से भवितव्य शब्द बनता है, जिसका अर्थ 'होने योग्य' होता है।

(५) निमित्त :– जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमित नहीं होता, परन्तु उस पर कार्य उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप किया जाता है, उसे निमित्त कहते हैं। तेल की उत्पत्ति में, तेली, कोल्हू, मशीन आदि बाह्य-वस्तुएँ निमित्त कही जाती हैं। सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम/क्षयोपशम/क्षय को अन्तरंग तथा देव-शास्त्र-गुरु को बहिरंग निमित्त कहा जाता है। देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा और सात तत्त्वों के विकल्पात्मक श्रद्धान को भी सम्यग्दर्शन में अन्तरंग निमित्त कहा जाता है तथा यह श्रद्धान आत्म-प्रतीतिरूप निश्चय सम्यग्दर्शन में निमित्त है – इस अपेक्षा इसे व्यवहारनय से सम्यग्दर्शन भी कहा जाता है।

उपादान-निमित्त के प्रकरण में यह चर्चा विस्तार से की जाती है।

प्रश्न १३. उपादान-निमित्त कर्त्ता-कर्म तथा कारण-कार्य में पाँच समवाय किस प्रकार घटित होते हैं?

उत्तर :– उपादान ही कार्योत्पत्ति का यथार्थ कारण होने से निश्चय-कर्त्ता है तथा कार्य ही कर्त्ता का कर्म है। अतः कारण-कार्य या कर्त्ता-कर्म पर्यायवाची हैं। उपादान और निमित्त ये दोनों कारण के भेद कहे जाते हैं। उपादान यथार्थ कारण है तथा निमित्त उपचरित कारण है।

स्वभाव, पुरुषार्थ और काललब्धि ये तीनों उपादानगत विशेषतायें हैं। भवितव्यता स्वयं कार्य है तथा निमित्त उपचरित कारण है। अतः चार समवाय उपादानरूप हैं और निमित्त उनसे पृथक् अनुकूल बाह्य पदार्थ है।

प्रश्न १४. नियति किसे कहते हैं?

उत्तर :– जिनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग २ पृष्ठ ६१२ में नियति को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है :–

''द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप चतुष्टय से समुदित नियत कार्य व्यवस्था को नियति कहते हैं। नियत कर्मोदयरूप निमित्त की अपेक्षा इसे ही दैव, नियतकाल की अपेक्षा इसे ही काललब्धि, और होने योग्य नियतभाव या

कार्य की अपेक्षा इसे ही भवितव्य कहते हैं।

पद्म पुराण सर्ग ३१ श्लोक २१३ में राम को वनवास और भरत को राज्य दिए जाने पर जनसामान्य की प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए आचार्य रविषेण लिखते हैं :–

कालः कर्मेश्वरो दैवं स्वभावः पुरुषः क्रिया।
नियतिर्वा करोत्येवं विचित्रं कः समीहितम्।।

''ऐसी विचित्र चेष्टा को काल, कर्म, ईश्वर, दैव, स्वभाव, पुरुष, क्रिया अथवा नियति ही कर सकती है, और कौन कर सकता है?''

उक्त सन्दर्भ को पाँच समवाय में घटित करते हुए जिनेन्द्र सिद्धान्त कोष भाग २ पृष्ठ ६१८ में क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी लिखते हैं :–

''काल को नियति में, कर्म व ईश्वर को निमित्त और दैव व क्रिया को भवितव्य में घटित कर लेने पर पाँच बातें रह जाती है। स्वभाव, निमित्त, नियति, पुरुषार्थ व भवितव्य-इन पाँच समवायों से समवेत ही कर्म-व्यवस्था की सिद्धि है, ऐसा प्रयोजन है।''

उक्त दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि नियति को काललब्धि का पर्यायवाची भी कहते हैं तथा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अथवा पाँचों समवायों के सुमेल को भी नियति कहते हैं।

प्रश्न १५. पाँचों समवाय की मुख्यता से सम्यग्दर्शनरूप कार्य की उत्पत्ति के कारण बताइये?

उत्तर :– किसी जीव को सम्यक्त्व की उत्पत्ति कैसे हुई? इस प्रश्न का उत्तर प्रत्येक समवाय की मुख्यता से निम्नानुसार होगा।

स्वभाव :– आत्मा के श्रद्धा गुण में सम्यग्दर्शनरूप परिणमन करने की शक्ति है, इसलिए सम्यग्दर्शन हुआ।

पुरुषार्थ :– आत्मा के त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव की प्रतीतिरूप सम्यक् पुरुषार्थ करने से सम्यग्दर्शन हुआ।

काललब्धि :– सम्यग्दर्शन होने का स्वकाल आया इसलिए सम्यग्दर्शन हुआ।

होनहार :– सम्यग्दर्शन होना था इसलिए सम्यग्दर्शन हुआ।

निमित्त :– दर्शनमोहनीय कर्म के उपशम आदि से सम्यग्दर्शन हुआ।

प्रश्न १६. प्रत्येक समवाय की उपयोगिता या अनिवार्यता समझाईये?

उत्तर :– किसी भी कार्य की उत्पत्ति के संबंध में मुख्यतः पाँच प्रश्न उत्पन्न होते हैं। जिनका समाधान निम्न समयवों से प्राप्त होगा। यदि सम्यग्दर्शन को विवक्षित कार्य मानें तो निम्न प्रश्नोत्तर श्रृंखला के माध्यम से पाँच समयवों की उपयोगिता स्पष्ट हो जाती है।

प्रश्न :– सम्यग्दर्शन कौन करेगा?

उत्तर :– अति आसन्न भव्य जीव ही सम्यग्दर्शन प्रगट करेगा, क्योंकि उसी में सम्यग्दर्शन प्रगट करने की योग्यता होती है। अन्य जीवों में तत्समय की योग्यता का अभाव होने से तथा पुद्गल आदि अजीव द्रव्यों में त्रैकालिक शक्ति का अभाव होने से उनमें सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होगा। इस प्रकार स्वभाव की उपयोगिता सिद्ध हुई।

प्रश्न :– सम्यग्दर्शन कैसे उत्पन्न होगा?

उत्तर :– आत्महित की भावनापूर्वक ज्ञानी गुरु की देशना के निमित्त से सात तत्त्वों का यथार्थ निर्णय करके आत्मा के त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव की प्रतीति करने से ही सम्यग्दर्शन प्रगट होगा। इस प्रकार पुरुषार्थ की उपयोगिता सिद्ध हुई।

प्रश्न :– यह जीव सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ कब करेगा?

उत्तर :– जब सम्यग्दर्शन प्रगट होने का स्वकाल होगा तब ही जीव सम्यग्दर्शन प्रगट करने का पुरुषार्थ करेगा। उससे पहले या बाद में नहीं। इस प्रकार नियति काल लब्धि की उपयोगिता सिद्ध हुई।

प्रश्न : उस काल में सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ ही क्यों होगा, केवलज्ञान का क्यों नहीं?

उत्तर :– उस काल में सम्यग्दर्शन ही होना है, केवलज्ञान नहीं, अतः सम्यग्दर्शन का ही पुरुषार्थ होगा। इस प्रकार भवितव्यता की उपयोगिता सिद्ध हुई।

प्रश्न :– सम्यग्दर्शन में निमित्त कौन होगा?

उत्तर :– सच्चे देव-शास्त्र-गुरु तथा दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम/क्षयोपशम/क्षय ही सम्यग्दर्शन में निमित्त हैं। इनके होने पर ही सम्यग्दर्शन होता है अन्यथा नहीं। इस प्रकार निमित्त की उपयोगिता सिद्ध हुई।

खानियाँ तत्त्व चर्चा भाग १ पृष्ठ २६, २०८ और २५० में अष्टसहस्री पृष्ठ २५७ पर दिए गए भट्ट अकलंकदेव विरचित निम्न छन्द के माध्यम से पाँचों समवायों के सुमेल की चर्चा की गई है :-

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायाश्च तादृशाः।
सहायास्तादृशा सन्ति यादृशी भवितव्यता।।

जिस जीव की जैसी भवितव्यता (होनहार) होती है, उसकी वैसी ही बुद्धि हो जाती है। वह प्रयत्न भी उसी प्रकार का करने लगता है और उसके सहायक भी उसी के अनुसार मिल जाते हैं।

प्रश्न १७. जब कार्योत्पत्ति में सभी समवायों का समान योगदान है, तो जगत् में और आगम में निमित्त की मुख्यता से अधिकांश कथन क्यों किये जाते हैं?

उत्तर :– उपादानगत चारों समवाय अर्थात् स्वभाव, पुरुषार्थ, काललब्धि और भवितव्यता सभी कार्यों में एक सामान्यरूप से व्याप्त हैं। किसी भी कार्य के बारे में पूछा जाए तो इन समवायों की ओर से एक ही उत्तर होंगे। जैसे - मिथ्यात्व क्यों हुआ? तो काललब्धि की अपेक्षा कहा जाएगा कि उसका स्वकाल था। यही उत्तर सम्यक्त्व, केवलज्ञान आदि किसी भी कार्य में तथा जन्म-मरण, लाभ-हानि आदि लौकिक कार्यों के सन्दर्भ में भी यही उत्तर होगा। स्वभाव, पुरुषार्थ होनहार आदि की अपेक्षा भी सभी कार्यों के कारणों की भाषा एक-सी होगी अतः ये चार समवाय ज्ञात हैं। निमित्त कौन है? यह

अज्ञात है इसीलिए निमित्त की मुख्यता से कथन करना अनिवार्य है। यदि कोई गिलास टूट गया और कोई पूछे कि यह किसने तोड़ा? तो उसका आशय निमित्त के बारे में जानने का है अतः निमित्त की मुख्यता से कथन किया जाता है। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि निमित्त की मुख्यता से कथन मात्र होता है निमित्त से कार्य नहीं होता।

प्रश्न १८. जब निमित्त से कार्य नहीं होता तो उसे उपचार से भी कारण कहने का क्या प्रयोजन है?

उत्तर :– निमित्त का यथार्थ ज्ञान होने पर वह उपादान का कर्त्ता है – ऐसी मिथ्या मान्यता मिट जाती है; तथा धर्म के सच्चे निमित्त देव–शास्त्र–गुरु की सच्ची श्रद्धा होती है। अन्यथा हम उन्हें ही अपने हित का कर्त्ता मानते रहेंगे। इसप्रकार कारण–कार्य व्यवस्था का यथार्थ ज्ञान करने के लिए निमित्त का यथार्थ ज्ञान करना आवश्यक है।

अहा! देखो तो सही! क्रमबद्धपर्याय के निर्णय में कितनी गम्भीरता है! द्रव्य की पर्याय पर–पदार्थों से उत्पन्न होती है – यह बात तो है ही नहीं, परन्तु द्रव्य स्वयं अपनी पर्याय को उल्टी–सीधी बदलना चाहे तो भी वह नहीं बदलती। जैसे त्रिकाली द्रव्य पलटकर अन्यरूप नहीं होता, वैसे उसका एक समय का अंश (परिणाम) पलटकर अन्य अंशरूप नहीं होता।

– अध्यात्म गंगा : बोल क्रमांक ३७५

क्रमबद्धपर्याय : आदर्श प्रश्न–पत्र

आदर्श प्रश्न १

(निम्न प्रश्नों के आधार पर और भी प्रश्न बनाकर अभ्यास कराया जाना चाहिए।)

प्रश्न १ :– निम्न प्रश्नों के उत्तरों को सही स्थान पर लीखिए?

१.	एक के बाद एक पर्याय का होना – इसी का नाम है।	– नियमितता
२.	जिसके बाद जो होना है वह पर्याय होती है।	– क्रम
३.	द्रव्य क्षेत्र काल और भाव के सुमेल को कहते हैं।	– प्रदेश
४.	प्रवाहक्रम के सूक्ष्म अंश को कहते हैं।	– व्यवस्थित
५.	विस्तारक्रम के सूक्ष्म अंश को कहते हैं।	– परिणाम
६.	द्रव्य का प्रत्येक प्रदेश या परिणाम उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप हैं, इसलिये इस पद्धति को कहते हैं।	– भवितव्यता
७.	लोकाकाश के एक–एक प्रदेश पर खचित है।	– त्रिलक्षण परिणाम पद्धति
८.	होने योग्य कार्य को कहते हैं।	– कालाणु
९.	क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि में सबसे प्रबल हेतु हैं।	– होनहार
१०.	वस्तु की सहज शक्तियों को कहते हैं।	– सर्वज्ञता
११.	प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति के निश्चित समय को कहते हैं।	– निमित्त
१२.	सुनिश्चित क्रम में होने वाले कार्य को कहा जाता है।	– काललब्धि
१३.	जिस पर कार्य की उत्पत्ति का जिस पर में आरोप किया जाता है, वह बाह्य–पदार्थ कहलाता है।	– स्वभाव

प्रश्न २. हाँ या ना में उत्तर दीजिए?

१. ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता है।

२. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता है।

३. ज्ञानी अपने रागादि भावों का कर्त्ता नहीं है।

४. द्रव्य अपनी पर्यायों के क्रम में परिवर्तन का कर्त्ता नहीं है।

५. जगत का जो कार्य हमारे ज्ञान में अव्यवस्थित लगता है, वास्तव में वह भी व्यवस्थित ही है। कोई भी कार्य अव्यवस्थित लगना हमारा अज्ञान है।

६. कार्य की उत्पत्ति में काललब्धि मुख्य करना और अन्य समवायों के गौण करना सम्यक् एकान्त है।

७. कार्य की उत्पत्ति में काललब्धि को मुख्य कर अन्य समवायों का निषेध ही कर देना सम्यक् अनेकान्त है।

प्रश्न ३. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए?

१. प्रत्येक परिणाम स्वरूप से उत्पन्न होने से .... है।
२. प्रत्येक परिणाम पूर्वरूप से विनष्ट होने से ....है।
३. प्रत्येक परिणाम प्रवाहक्रम में स्वकाल में स्थित होने से .... है।
४. प्रत्येक परिणाम अपने स्वकाल में .... विद्यमान है।
५. तीनों काल के एक-एक समय में प्रत्येक गुण की .... खचित है।
६. भवितव्यता की शक्ति .... है अर्थात् उसे बदला नहीं जा सकता।
७. आगम से .... की सिद्धि की है एवं उससे .... की सिद्धि की गई है।
८. .... पूर्वक ही क्रमबद्धता ख्याल में आती है।
९. हमें अव्यवस्थित दिखनेवाली व्यवस्था भी पूर्व .... और .... होती है।
१०. उत्पन्न होने वाला कार्य ही .... का ज्ञापक है।
११. प्रत्येक द्रव्य की पर्यायें तीन काल के .... बराबर है।
१२. द्रव्यदृष्टि प्राप्त करने के लिये पर्यायों की .... की प्रतीति करना आवश्यक है।

प्रश्न ४. निम्न प्रश्नों के उत्तर सही उत्तर पर चिन्ह ( ) लगाईये?

१. वस्तु के परिणमन की विशेषता है।
अ. अनियमितता ब. अव्यवस्थित स. स्वतंत्र द. प्रजातंत्र

२. आगम से सिद्ध होती है।
अ. सामाजिकता ब. सांस्कृतिकता स. सर्वज्ञता द. संप्रभुत्ता

३. अकर्त्तावाद का वास्तविक अर्थ है।
अ. ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता है ब. एक दूसरे द्रव्य का कर्त्ता नहीं है।
स. अज्ञानी पर का कर्त्ता है द. जीव रागादि का कर्त्ता है।

४. क्रमबद्धपर्याय में यह शामिल नहीं है।
अ. द्रव्य की निश्चितता ब. द्रव्य की नित्यता स. भाव की निश्चितता

५. यह कथन गलत है
अ. सभी जीव पूर्ण वीतरागी हैं। ब. पर्यायें नियमित हैं स. जगत पूर्ण व्यवस्थित है।

****

क्रमबद्धपर्याय और पुरुषार्थ

अज्ञानी कहते हैं कि इस क्रमबद्धपर्याय को मानें तो पुरुषार्थ उड़ जाता है; किन्तु ऐसा नहीं है। इस क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करने से कर्त्ताबुद्धि का मिथ्याभिमान उड़ जाता है और निरन्तर ज्ञायकपने का सच्चा पुरुषार्थ होता है। ज्ञानस्वभाव का पुरुषार्थ न करे उसके क्रमबद्धपर्याय का निर्णय भी सच्चा नहीं है। ज्ञानस्वभाव के पुरुषार्थ द्वारा क्रमबद्धपर्याय का निर्णय भी सच्चा नहीं है। ज्ञानस्वभाव के पुरुषार्थ द्वारा क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करके जहाँ पर्याय स्वसन्मुख हुई, वहाँ एक समय में उस पर्याय में पाँचों समवाय आ जाते हैं। ...पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियत और कर्म का अभाव – यह पाँचों समवाय एकसमय की पर्याय में आ जाते हैं।

ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से पुरुषार्थ होता है, तथापि पर्याय का क्रम नहीं टूटता।

देखो, यह वस्तुस्थिति! पुरुषार्थ भी नहीं उड़ता और क्रम भी नहीं टूटता। ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि का पुरुषार्थ होता है और वैसी निर्मल दशाएँ होती जाती हैं; तथापि पर्याय की क्रमबद्धता नहीं टूटती।

– पूज्यश्रीकानजी स्वामी : ज्ञानस्वभाव–ज्ञेयस्वभाव

●●●

क्रमबद्धपर्याय पोषक महत्त्वपूर्ण विचार बिन्दु :

१. प्रत्येक पर्याय अपने स्वकाल में त्रिकाल विद्यमान है।

२. परिणाम को नहीं हटा सकते, परिणाम में से एकत्व हटा सकते हैं।

– अध्यात्म गंगा : बोल क्रमांक ८९

३. क्रमबद्ध की श्रद्धा में अकर्त्तापना आता है। जो हो रहा है, उसे क्या करना? उसे मात्र जानना है। मात्र जाननेवाला रहने पर राग टलता जाता है और वीतरागता बढ़ती जाती है।

– अध्यात्म गंगा : बोल क्रमांक १०१

४. पर्यायें तो जैसी स्वयं होनी हैं वैसी ही होती हैं, उनको क्या बदलना है? उनको क्या ठीक करना है? यह समझते ही समझ बदल गई और अपना कार्य शुरू हो गया; भगवान बन गया अपने द्रव्य का।

– अध्यात्म गंगा : बोल क्रमांक २०२

५. वास्तव में सम्पूर्ण लोक को जानें तीर्थनाथ भगवान।
एक अनघ निज सुख में स्थित है जो निज ज्ञायक भगवान,
उसे न जानें तीर्थनाथ वे – ऐसा यदि कोई मुनिराज।
कहते हैं व्यवहार मार्ग से, तो नहिं दोषी वे मुनिराज।।

– नियमसार कलश २८५ का पद्यानुवाद

●●●